ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जुलाई २०१४ Date of Printing = 5-7-2014
प्रकाशन दिनांक= 5-7-2014
वर्ष ४३ : अङ्क ९
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : आषाढ़-श्रावण २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
सम्पादक (आदरी) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक: धर्मपाल आर्य
सम्पादक : डॉ. अशोक कुमार
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com
एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

❑ वेदोपदेश २
❑ लोक लोकान्तरों में..... ४
❑ इतिहास को ६
❑ मनुष्य के छः शत्रु ८
❑ हिन्दू विद्वानों.... १३
❑ क्या हम मनुष्य हैं १६
❑ सबका मालिक एक.... २०
❑ दिन को सुदिन २४

सत्यार्थप्रकाश
प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य **यज्ञो=देवता।** भुरिक त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। अन्त्यस्या **अग्निसवितारौ** (भौतिकोऽग्निः, जगदीश्वरश्च) देवते गायत्री छन्दः। षड्ज स्वरः।

स यज्ञः कस्मै प्रयोजनाय संपादनीय इत्युपदिश्यते।।

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिए करना चाहिए इस विषय का उपदेश किया है।

ओ३म् जनंयत्यै त्वा संयौंमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वां घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु तें यज्ञपंतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं मा हिंꣳसीद्देवस्त्वां सविता श्रंपयतुं वर्षिष्ठेऽधि नाकें।।२२।।

पदार्थः **(जनयत्यै)** सर्वसुखोत्पादिकायै राज्यलक्ष्म्यै **(त्वा)** तं त्रिविधं यज्ञम् **(सम्)** सम्यक् **(यौमि)** मिश्रयामि। अग्नौ प्रक्षिप्य वियोजयामि वा **(इदम्)** संस्कृतं हविः **(अग्नेः)** अग्नेर्मध्ये **(इदम्)** यद्धुतं तत् **(अग्नीषोमयोः)** अग्निश्च सोमश्च तयोर्मध्ये **(इषे)** अन्नाद्याय **(त्वा)** तं वृष्टिशुद्धिहेतुम् **(घर्मः)** यज्ञः। धर्म इति यज्ञनामसु पठितम।। निघं. 3/17।। **(असि)** भवति। अत्र व्यत्ययः **(विश्वायुः)** विश्वं पूर्णामायुर्यस्मात् सः **(उरुप्रथाः)** बहुः प्रथः=सुखस्य विस्तारो यस्मात् सः। उर्विति बहुनामसु पठितम् निघं 3/1।। **(उरु प्रथस्व)** बहु विस्तारय **(उरु)** बहु **(ते)** तुभ्यम् **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य स्वामी पालकः **(प्रथताम्)** विस्तारयतु **(अग्निः)** भौतिको यज्ञ-सम्बन्धी शरीरस्थो वा **(ते)** तव तस्य वा। **युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तः पादम्।। अ. 8/3।103।। अनेन मूर्द्धन्यादेशः (त्वचम्)** कञ्चिदपि शरीरावयवं सुखहेतुम् **(मा)** निषेधार्थे **(हिंसीत्)** हिनस्तु। **अत्र लोडर्थे लुङ् (देवः)** सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः सूर्य्यलोको वा **(त्वा)** त्वां तं वा **(सविता)** अन्तःप्रेरको वृष्टिहेतुर्वा **(श्रपयतु)** श्रपयति=पाचयति। **अत्र लडर्थे लोट् (वर्षिष्ठे)** अतिशयेन वृद्धो=वर्षिष्ठस्तस्मिन् विशाले सुखस्वरूपे **(अधि)** अधीत्युपरिभावमैश्वर्य्यं वा प्राह।। निरु. 1/3।। **(नाके)** अकं=दुःखं न विद्यते यस्मिन्नसौ नाकस्तस्मिन्।। **अयं मंत्रः श. 1/1/2!3-14 व्याख्यातः।।22।।**

सपदार्थान्वयः **हे मनुष्याः! यथाऽहं जनयत्यै** सर्वसुखोत्पादिकायै राज्यलक्ष्म्यै **यं (त्वां)**=त्रिविधं **(यज्ञं)। यज्ञंसम् यौमि** सम्यङ् मिश्रयामि **तथैव स भवद्भिरपि संयूयताम्। अस्माभिर्यदिदम्=संस्कृतं हविः (अग्नेः) =अग्नेर्मध्ये प्रक्षिप्यते तद् इदं** यध्दुतं तद् **विस्तीर्णं भूत्वा अग्नीषोमयो** अग्निश्च सोमश्च तयो (र्मध्ये) **मध्ये स्थित्वा** इषे अन्नाद्याय **भवति।**

यो विश्वायुः विश्वं=पूर्णमायुर्यस्मात् स **उरुप्रथाः** बहुः प्रथः=सुखस्य विस्तारो यस्मात् स **धर्मः=यज्ञोऽस्ति, यथाऽयं मया उरु बहु प्रथ्यते तथैव प्रतिजनं त्वं तमेतमुरु** बहु **प्रथस्व** विस्तारय।

एवं कृतवते ते=तुभ्यमयं यज्ञपतिः यज्ञस्य स्वामी=पालको **अग्निः** भौतिको यज्ञसम्बन्धी शरीरस्थ वा **सविता अन्तप्रेरको** देवः=जगदीश्वरः सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः **च** उरु बहु **सुखं प्रथतां** विस्तारयतु।

ते तव तस्य वा **त्वचं** कञ्चिदपि शरीराऽवयवं सुखहेतं **मा हिंसीत्=नैव हिनस्ति** हिनस्तु।

स खलु त्वा=त्वां वर्षिष्ठे अतिशयेन वृद्धो=वर्षिष्ठस्तस्मिन् विशाले सुखस्वरूपे **अधि नाके अकं**=दुखं न विद्यते यस्मिन्नसौ नाकस्तस्मिन् (**श्रपयतु**) **सुखयुक्तं करोतु।।** (**इत्येकः**)।।

भाषार्थ : हे मनुष्यो! जैसे मैं **(जनयत्यै)** सब सुखों की उत्पादक राजलक्ष्मी के लिए जिस **(त्वा)** तीन प्रकार के यज्ञ का **(संयौमि)** अनुष्ठान करता हूं वैसे उसका आप लोग भी अनुष्ठान करें। हम लोग जिस **(इदम्)** शुद्ध हवि को **(अग्नेः)** अग्नि में डालते हैं वह **(इदम्)** होम की हुई हवि फैल कर **(अग्नीषोमयोः)** सूर्य और चन्द्र के मध्य में स्थित होकर **(इषे)** अन्नादि का हेतु बनती है।

जो **(विश्वायुः)** पूर्ण आयु का हेतु तथा **(उरुप्रथाः)** बहुत सुख का विस्तार करने वाला **(धर्मः)** यज्ञ है, उसे जैसे मैं **(उरु)** बहुत विस्तृत करता हूं वैसे जन-जन में तू उसका **(उरु)** अत्यन्त **(प्रथस्व)** विस्तार कर।

ऐसा करने वाले **(ते)** आपके लिए यह **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का पालक **(अग्निः)** भौतिक यज्ञ-सम्बन्धी अथवा शरीरस्य अग्नि तथा **(सविता)** अन्तरात्मा में प्रेरणा करने वाला **(देवः)** सर्व प्रकाशक परमेश्वर **(उरु)** बहुत सुख का **(प्रथताम्)** विस्तार करे।

(ते) तेरे **(त्वचम्)** सुखदायक शरीर के किसी भी अवयव को **(मा हिंसीत्)** कष्ट न देवे।

वह यज्ञ निश्चय ही **(त्वा)** तुझे **(वर्षिष्ठे)** अत्यन्त विशाल सुखस्वरूप **(अधि-नाके)** दुःखरहित स्वर्ग में सुखयुक्त करे **(यह मन्त्र का पहला अन्वय है)**।।

भावार्थः अत्र लुप्तोपमालङ्कारो वेद्यः।। मनुष्यैरेवं भूतो यज्ञः सदैव कार्यः-योः पूर्णाश्रियं, सकलमायुः, अन्नादिपदार्थान्, रोगनाशं, सर्वाणि सुखानि च प्रथयति, स केनापि कदाचिन्नैव त्याज्यः।

कुतः?-नैवैतेन वायुवृष्टिजलौषधिशुद्धिकार‘केण विना कस्यापि प्राणिनः सम्यक् सुखानि सिध्यन्तात्यतः।

एव स जगदीश्वरः सर्वान् प्रत्याज्ञापयति।। 1/22।।

भावार्थ इस मंत्र में लुप्तोपमा अलंकार समझें। मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ सदा करना चाहिये जो पूर्ण लक्ष्मी, पूर्ण वायु, अन्नादि पदार्थ, और सब सुखों का विस्तार करता है, वह यज्ञ किसी को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये।

क्योंकि-इस वायु, वर्षा-जल और औषधियों के शोधक यज्ञ के बिना किसी प्राणी को उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

इस प्रकार जगदीश्वर यज्ञानुष्ठान की सब मनुष्यों को आज्ञा देता है।।1।22।।

लोक-लोकान्तरों में मनुष्यादि प्रजा- एक चिन्तन

डॉ. सुरेन्द्र कुमार (मनुस्मृति भाष्यकार)

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास का यह सर्वाधिक चर्चित एवं विवादास्पद विषय है। शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण प्रस्तुत करके महर्षि लिखते हैं कि सूर्य-चन्द्र आदि इन कारणों से 'वसु' कहाते हैं-

"एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते तद् यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद् वसव इति।" (14.6.7.4)

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका 'वसु' नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजायें वसती हैं, और ये ही सबको वसाते हैं। जिसलिये वास के- निवास करने के घर हैं, इसलिये इनका नाम 'वसु' है। जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा-सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है, तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता, तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो, तो सफल कभी हो सकता है? इसलिए सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

इस वैज्ञानिक विषय पर विचार करते समय हमें निम्नांकित बिन्दुओं पर भी विचार करना चाहिए, तभी यह विषय स्पष्ट हो सकेगा-

(क) लोक-लोकान्तरों में निवास होने और निवास योग्य वातावरण लोक-लोकान्तरों द्वारा निर्माण करने सम्बन्धी यह मान्यता मूल रूप से शतपथ ब्राह्मण की है। महर्षि ने उसको उद्धृत करके उसके अनुसार यहां उत्तर दिया है। यह महर्षि की अपनी खोज या स्थापना नहीं है, यह 'शतपथ ब्राह्मण' का कथन है।

(ख) महर्षि ने समस्त लोक-लोकान्तरों को 'वसु' कहते हुए उनकी दो विशेषताएं बतायी हैं- 1. ये लोक या तो निवास के आधार हैं, अथवा 2. निवास योग्य वातावरण बनाने में कारण हैं- "प्रजा बसती है और ये ही सबको बसाते हैं।" विज्ञान में आज भी यही सिद्धान्त स्वीकृत है कि लोक-लोकान्तरों के परस्पर अनुकूल वातावरण से ही जीवन संभव बना हुआ है। अतः आवश्यक नहीं कि सब ग्रहों में प्रजा हो। जिसमें प्रजा नहीं है, वह बसाने में कारण अवश्य हैं सब लोकों में दोनों में से एक विशेषता अवश्य है। अतः दोनों अर्थों की संगति लगाकर सब लोकों की व्याख्या करनी चाहिए। केवल एक 'बसने वाली' बात कहना अपूर्ण और अज्ञानतापूर्ण कथन है।

(ग) यह भी ध्यान देने की बात है कि महर्षि ने शतपथ ब्राह्मण के वाक्य की व्याख्या करते हुए "मनुष्यादि प्रजा" और "मनुष्यादि सृष्टि" शब्दों का प्रयोग किया है, जिसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सब लोकों में मनुष्य ही हों। यहां 'आदि' शब्द से संसार के अन्य कीटाणु तक के प्राणियों का ग्रहण होता है। इस बात को हम महर्षि के उपर्युक्त वाक्य से समझ सकते हैं- "यह छोटा-सा (पृथिवी) लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है।" इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि इसमें सर्वत्र मनुष्य ही मनुष्य हैं या केवल मनुष्यों से भरा हुआ है। "आदि" शब्द संकेत देता है कि कहीं मनुष्य हैं, तो कहीं केवल कीटाणु भी हो सकते हैं। कहीं अन्य जीव हो सकते हैं। जैसे, समुद्र में केवल जलचर हैं, जंगलों में वन्य प्राणी हैं, आकाश में पक्षी हैं, भूमि के अन्दर कीट हैं,

आकाशादि में कीटाणु हैं।

इसी प्रकार यहां अन्य ग्रहों नक्षत्रों के साथ सूर्य के उल्लेख पर कुछ पाठकों को आपत्ति है, क्योंकि आज का विज्ञान सूर्य को गैसजनित आग का एक गोला मानता है। अभी तक आज के वैज्ञानिकों के पास सूर्य की केवल बाहरी जानकारी है, ब्रह्माण्ड के अन्य सूर्यों की तो है ही नहीं। इस जानकारी पर भी वैज्ञानिकों में मतभेद है। जब तक सभी सूर्यों की पूर्ण प्रामाणिक खोज या जानकारी उपलब्ध नहीं होती तब तक शतपथ के वचन को पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता।

(घ) शतपथ ब्राह्मण की मान्यता के अनुसार- 'सब लोक लोकान्तर वसु हैं' अर्थात् या तो उनमें प्राणी बसते हैं या वे अन्य लोकों में प्राणियों की उत्पत्ति और निवास में सहायक कारण हैं। यह वैज्ञानिक मान्यता आज भी है। इसी के आधार पर आज के वैज्ञानिक दूसरे लोकों में मानवसृष्टि की खोज में जुटे हैं अन्य ग्रहों पर जाने का यही खोज मुख्य प्रयोजन है।

ग्रहों पर जाने के बाद वहां की प्राकृतिक परिस्थितियों के विषय में आज के विज्ञान ने अभी कोई अन्तिम निर्णय नहीं दिया है। जब तक अन्तिम निर्णय नहीं होता तब तक उनके वर्तमान कथनों को अन्तिम प्रमाण नहीं माना जा सकता। कभी उन्होंने कहा था। मंगल ग्रह पर जल नहीं है। नयी खोज के अनुसार जल होना स्वीकार किया है। इसी प्रकार जब तक अन्तिम वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं आता तब तक शतपथ ब्राह्मण के वचन को अमान्य नहीं किया जा सकता। महर्षि के आलोचक क्या इन परिवर्तनशील वैज्ञानिकों की भी आलोचना करेंगे?

(ङ.) शतपथ ब्राह्मण हजारों वर्ष पुराना ग्रन्थ है और उसमें वर्णित मान्यता और भी प्राचीन है। हजारों लाखों वर्ष पुरानी प्राकृतिक मान्यता की तुलना वर्तमान पर्यावरणीय परिस्थितियों से करना वैज्ञानिक दृष्टि से सही नहीं है। प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। आज के वैज्ञानिकों का मत लीजिए पहली चन्द्र यात्रा करने के बाद उन्होंने कहा था कि चन्द्रमा पर जल आदि नहीं है। अब नया मन्तव्य यह है कि कभी वहां जल और समुद्र रहे हैं क्योंकि समुद्रीय और अन्य जलों के चिन्ह या गढ़े वहां मिले हैं। जलसम्बन्धी इस नई खोज से वैदिक साहित्य में प्राप्त चन्द्रमा सम्बन्धी विवरणों की और शतपथ के उक्तवचन की सत्यता सिद्ध हो गई है कि वहां प्राणी बसते थे। महर्षि के आलोचक अब उत्तर दें कि वे इन वैज्ञानिकों को क्या कहेंगे जो पल पल में पलटते हैं।

(च) आज के विज्ञान को अति उच्च विज्ञान माना जाता है। फिर भी उसकी स्थापित मान्यताएं दिन-प्रतिदिन बदल रही हैं या गलत सिद्ध हो रही हैं। उदाहरण के रूप में, वैज्ञानिकों का अब तक मानना रहा है कि एक सौ डिग्री तापमान में सभी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। किन्तु गत दिनों खोज से पाया कि न्यूजीलैण्ड आदि कई देशों के समुद्र में ज्वाला-मुखी के ताप से समुद्र का पानी तीन-चार सौ डिग्री तापमान पर खौलता रहता है। वैज्ञानिकों को उसमें जीवित रहने वाले क्षुद्र जीव मिले हैं, जो महान् आश्चर्य का विषय है। ऐसे जीवों को वैदिक साहित्य में पहले से ही 'आग्नेय जीव' कहा हुआ है। जिन जीवों की कल्पना आज के वैज्ञानिक नहीं कर सके, उनका विवरण वैदिक साहित्य में प्राप्त है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण को अभी तक की खोजों के अनुसार अमान्य नहीं किया जा सकता।

(छ) इस सन्दर्भ में अन्तिम कथन यह है कि

(शेष पृष्ठ 10 पर)

इतिहास को बिगाड़ती कहानियां (4)

(राजेशार्य आट्टा)

भक्ति या आस्था के नाम पर भी लोगों ने इतिहास बिगाड़ा है। वर्तमान प्रणाली से ज्ञात इतिहास में पहले सुधारकों में महात्मा बुद्ध, महावीर आदि का नाम लिया जाता है, जिन्होंने सुधार के लिए ईश्वर व उसके नाम पर होने वाले कर्मकाण्ड तक को नकार दिया था, पर उनके शिष्यों ने उनके चरित् को भी अलौकिकता की चादर से ढक दिया। इसी तरह ईसा के अनुयायियों ने उसके चरित् को चमत्कारों से परिपूर्ण दिखाया है। पौराणिक देवताओं का चरित् भी आसमानी है। इस्लाम के अनुयायी भी किसी से कम नहीं है। पुराणों की तर्ज पर वाल्मीकि रामायण में पहले ही बहुत मिलावट हो चुकी थी, पर भक्त कवि तुलसीदास ने रामायण के इतिहास को भक्ति का जामा पहनाकर उसे अलौकिक (आसमानी) कथा बना दिया। सामान्य वर्ग में उसी का अधिक प्रचार हुआ।

गुरु नानक देव से लेकर हिन्दू समाज में जो सुधार और भक्ति की लहर चली थी, उसे गुरु अर्जुन देव व गुरु तेग बहादुर के बलिदान ने नया मोड़ दिया। भक्ति रस में वीर रस मिल गया और गुरु गोविन्द सिंह व वीर वैरागी वन्दा के त्याग, बलिदान व वीरता ने उसे ऊँचाई के शिखरों पर पहुँचा दिया, पर चमत्कार के प्रभाव से गुरु पन्थ के शिष्य (सिख) भी नहीं बच पाए। वे उनके भक्ति, त्याग व बलिदान की अपेक्षा उनके चमत्कारों से अधिक प्रभावित हैं।

यद्यपि ये सभी सम्प्रदाय एक दूसरे के विरोध (सुधार) में ही उत्पन्न हुए थे, तथापि कोई भी चमत्कारों से मुक्त नहीं हो पाया। यही कारण है कि उन युगपुरुषों का चरित् पूजनीय तो हो गया, पर आचरणीय नहीं बन पाया। आज भारत के गाँव, शहर, कस्बों में सन्त, महन्त, पीर, फकीर की समाधि, मजार आदि की पूजा इसीलिए होती है कि उनके साथ चमत्कारों की कहानियाँ जुड़ी हैं और अब भी लोग किसी चमत्कार की आस लगाए हुए हैं। यदि उन सन्त-पीरों के पास कोई अलौकिक शक्ति थी, तो उसका समाज को क्या लाभ हुआ? क्या उन्होंने समाज को कोई भौतिक साधन (रेल, गाड़ी, मोबाइल, दूरदर्शन आदि) दिया? क्या समाज के लोगों ने अपनी बुराइयाँ छोड़कर आध्यात्मिक उन्नति की? मुझे तो उनकी अपेक्षा एक वैज्ञानिक अधिक आदरणीय लगता है, जिसने 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' का नारा लगाकर बिजली का ऐसा बल्ब बनाया कि अन्धेरी रात भी प्रकाश से जगमगा उठी।

आश्चर्य तो इस बात का है कि ईश्वर को मानने वाले लोग प्रकृति के नियम के विरुद्ध कार्य होने को ही चमत्कार मानते हैं, जबकि नियम-विरुद्धता तो अराजकता है जो ईश्वर के नाम के किसी नियामक के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाती है, उसकी सिद्धि नहीं करती। ईश्वर का अस्तित्व तभी माना जा सकता हे, जब सभी कार्य नियमबद्ध होते रहें। नियम का अपवाद भी नियमबद्धता को ही सूचित करता है नियम रहितता को नहीं। जैसे- मानव के एक हाथ में पाँच उँगली (अंगूठे सहित) होती हैं, पर किसी-किसी की छह भी हो जाती हैं। इससे पाँच का नियम सदा के लिए खत्म नहीं हो जाता। सृष्टि की यह नियमबद्धता ही ईश्वर की सूचक है। कोई सन्त, महन्त, पीर फकीर इसे अपनी मर्जी (इच्छा) के अनुसार नहीं चला सकता।

मत, मजहब, सम्प्रदाय को धर्म मानने वाले लोगों

की कहानी बड़ी विचित्र है। कोई अपने मजहब को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए बहुत प्राचीन बताते हैं। (जैसे रामपाल दास कबीर दास को वेदों में ढूँढ रहा है) और कुछ अपने सम्प्रदाय को सबसे नया बताकर सर्वश्रेष्ठ व बाकी सबको हेय सिद्ध करते हैं।

एक दिन एक सिक्ख सज्जन गुरुनानक देव जी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहने लगे कि एक बार गुरु नानक देव जी से भर्तृहरि ने पूछा- आपका मजहब क्या है? मैंने उन्हें बीच में ही टोक लिया- ये कौन से भर्तृहरि थे? वे बोले- वही बैरागी राजा भर्तृहरि। मैंने कहा- उनका काल तो गुरु नानक देव जी से बहुत पहले (लगभग 1500 वर्ष पूर्व) विक्रमी संवत् चलाने वाले राजा विक्रमादित्य के समकालीन (दोनों भाई थे) माना जाता है। फिर उनकी भेंट कैसे सम्भव है? वे बोले- भर्तृहरि ने प्राणायाम से अपनी उम्र बढ़ा ली थी। यह सुनकर मैं हैरान हो गया कि इस युग में भी पढ़े-लिखे लोग इन कहानियों पर विश्वास करते हैं रामायण कालीन परशुराम को महाभारत काल में भी मानने वाले लोगों ने ही तो आर्यों के प्राचीन इतिहास को संदेह के घेरे में खड़ा किया है।

वही सज्जन एक बार कहने लगे कि गुरु गोविन्द सिंह जी को 9 वर्ष की अवस्था में ही गुरु की गद्दी मिल गई थी (गुरु तेग बहादुर का बलिदान होने के कारण)। एक बार वे कही जा रहे थे तो मार्ग में किसी पंडित ने अभिमान में आकर (कि यह छोटा सा बच्चा कैसे गुरु बन गया) गुरु जी से कहा कि मैं गीता का श्लोक बोलता हूँ, आप उसका अर्थ बताइये।' गुरु जी बोले- 'मेरी तो छोड़ों, तुम किसी भी आदमी को ले आओ, मेरे आदेश (आशीर्वाद) से वह भी अर्थ बता देगा।' पण्डित किसी गूँगे आदमी को ले आया। गुरु जी ने उसके सिर पर हाथ रखा ओर गूँगा आदमी पण्डित के श्लोक का अर्थ बोलने लगा।' मैंने कहा- यह चमत्कारी शक्ति राष्ट्र-धर्म के शत्रुओं (जिन्होंने उनके पिता का सिर काटा व पुत्रों को दीवार में चिनकर मरवा दिया) के विरुद्ध क्यों नही दिखाई? ऐसी कहानियों पर रीझने वाले लोग उन महापुरुषों के त्याग व बलिदान की क्या कीमत जानेंगे?

यहाँ तक तो ठीक था। कम से कम इन लोगों ने अपने आदर्श पुरुषों से कोई समाज विरोधी कर्म तो नहीं करवाया, पर भारत के प्राचीन इतिहास को सबसे अधिक भ्रष्ट किया है पुराण पन्थों ने। जिन्होंने अपनी विद्या और ब्रह्मचर्य के कठोर तप से ऋषि, महर्षि, देव, देवर्षि आदि की पदवी प्राप्त करने वाले, ईश्वर-प्राप्ति के लिए बार-बार ब्रह्मचर्य को प्राथमिकता देने वाले महापुरुषों को कामी, क्रोधी, व्यभिचारी आदि लिखकर दण्डनीय अपराध किया है आर्यो का प्राचीन इतिहास (महाभारत) बताता है कि इस धरती (भारत) पर 88000 उर्ध्व-रेता (जो आजीवन ब्रह्मचारी रहे और जिनका मस्तिष्क ब्रह्म तेज से देदीप्यमान रहता था) ऋषि हो चुके हैं। उनके ज्ञान, तप और सदाचार के साक्षी उनके द्वारा लिखे गये उपवेद, दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण आदि ग्रन्थ हैं, पर आप सारे पुराणों को पढ़ जाइये, आपको कोई भी देवता, कोई भी ऋषि-महर्षि सदाचारी नहीं मिलेगा। कारण, नीच कामी, व्यभिचारी धूर्तो ने ऋषियों के नाम से अपनी कहानी लिख रखी है। और योग की अति सूक्ष्म इकाइयों तक पहुँचा हुआ महर्षि वेद व्यास जैसा ऋषि किसी (राधा-कृष्ण) की प्रेम कहानी व घर-गृहस्थी (शिव-पार्वती) की बातें लिखने में अपना जीवन बर्बाद थोड़े ही करेगा, जो उन्हे 18 पुराणों का रचयिता प्रचारित कर दिया।

ठीक है कि इन भागवत आदि पुराणों में कुछ ऐतिहासिक सामग्री भी है, जो किसी प्राचीन विद्वान् द्वारा लिखी गई होगी, पर अब ये अपना ऐतिहासिक महत्त्व खो चुके हैं। सम्भावना है कि बौद्ध और विकृत

मनुष्य के छः शत्रु

(उत्तरा नेर्रुकर)

मानवों को कर्म करने में जानवरों से कहीं अधिक स्वतन्त्रता है। यही नहीं उनके मानसिक भावों के भी इन्द्रधनुष जैसे अनगिनत रंग होते हैं। इतनी सारी भावनाएं पशुओं में नहीं पाई जातीं इस स्वतन्त्रता के कारण ही मनुष्यों में सुख-दुःख भी विशेष रूप से चित्रित होते हैं। दुःखों से बचने के लिए, परमात्मा ने वेदद्वारा धर्म का निरूपण किया। तथापि हमारे कुछ मानसिक शत्रु हमें धर्म का निर्वहन करने में बाधित करते हैं। इस लेख में इन पर विजय पाने का एक उपाय दिया गया है।

शास्त्रों में मनुष्य के षड् रिपु बताए गए हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ये इस प्रकार हैं-

काम- सब प्रकार की इच्छाएं। जब ये इच्छाएं हम पर हावी हो जाती है, तब हम उनकी पूर्ति के लिए हत्या आदि भयंकर कृत्य करने से भी नहीं झिझकते।

क्रोध- क्रोध के वश में तो हम सभी जानते हैं कि हम प्रायः ऐसे कृत्य कर डालते हैं जिन पर हमें बाद में पछतावा होता है।

लोभ- काम की जब पराकाष्ठा हो जाती है, तब हम दूसरे की वस्तु का लोभ करने लगते हैं। इससे स्तेय (चोरी) आदि अनेकों पाप करते हैं।

मोह- जहां एक ओर मोह वस्तुओं, परिजनों, आदि से लगाव होता है, वहीं इसका विस्तृत अर्थ है सत्य न जानना। जिस प्रकार हम मृगतृष्णा में कुछ को कुछ देखते हैं, वैसे ही मोह के कारण हम अपने को अपना शरीर मानते हैं और शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में जीवन लगा देते हैं; अपने माता-पिता, सन्तान आदि को अपना मानकर उनके सुख में सुखी और उनके दुःख में दुःखी होते हैं, आदि, आदि। वस्तुतः, अन्य सभी भावों के मूल में मोह या अविद्या ही होती है।

मद- अभिमान करना मद है। इसके कारण हम क्रोध और मात्सर्य में अनेकों बार फंस जाते हैं।

मात्सर्य- लोभ से उत्पन्न यह भाव, हमारी इष्ट वस्तु/सुख को दूसरे को पाते हुए देखकर, दूसरे के सुख में दुःखी होना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये सभी मानसिक विकास एक दूसरे से ही उत्पन्न होते हैं, एक-दूसरे से सम्बद्ध है। गीता कहती है-

ध्यायतो विषयान्पुंसः सड्.गस्तेषूपजायते।
सड्.गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।
गीता 2/62-63।।

अर्थात् विषयों के बारे में सोचते-सोचते मनुष्य का उनमें लगाव उत्पन्न हो जाता है। उस लगाव से काम, काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह (मोह), सम्मोह से स्मृति का नाश, स्मृतिनाश से ज्ञान का नाश और ज्ञान के नाश से वह आत्मा स्वयं नष्ट हो जाती है, अर्थात् अधर्म में फंस जाती है।

वस्तुतः इन सभी को इच्छा और द्वेष में बांटा जा सकता है- काम, लोभ, मोह, इच्छा के रूप हैं, क्रोध और ईर्ष्या के और मोह की अतिशयिता है। न्यायदर्शन बताता है कि इच्छा और द्वेष आत्मा के लिड्.ग हैं-

इच्छाद्वेषप्रयतनसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिड्.गम्।।1/10।।

अर्थात् इच्छा या काम, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान आत्मा के सूचक हैं। इनको किसी वस्तु में देखकर हम जान सकते हैं कि इसमें आत्मा है।

वैशेषिक भी यही कहता है-

प्राणापाननिमेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नमात्मनो लिड्.गानि।। 3/2/4।।

अर्थात् श्वास-निःश्वास लेना, पलक झपकना, चेतन होना, चिन्तन करना और ज्ञान होना, इन्द्रियों का परस्पर मिलकर ज्ञान होना, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न करना- ये सब आत्मा के अस्तित्व को बताने वाले हैं।

इससे हम जान सकते हैं कि शरीर के जुड़ते ही लिड्.ग भी हमसे चिपक जाते हैं। ये आत्मा के स्वभाव न होकर, प्रकृति के गुण होते हैं, जो हममें दिखने लगते हैं-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहड्.कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।
गीता 3/27।।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।
गीता 3/37।।

अर्थात् प्रकृति के गुण सारे कर्म हर प्रकार से करते हैं। आत्मा, अहंकार से अन्धी होकर, "मैंने किया"- ऐसा समझती है। काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन होते हैं। ये सब खा जाने वाले (सब नष्ट करने वाले), महान पापी (अत्यधिक पाप कराने वाले) होते हैं। इस संसार में इनको अपना वैरी मानना चाहिए।

हमारा अज्ञान हमसे इतना बलपूर्वक चिपका होता है कि इन शत्रुओं से छुटकारा पाना अत्यधिक कठिन हो जाता है। छुटकारा पाने के लिए विरक्ति के सारे उपाय करने पड़ते हैं, तप करना पड़ता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है।

परन्तु इनसे थोड़ा सरल एक उपाय भी है, जो हमको कठिन उपायों को करने में भी आसानी देता है। वह है- इन भावनाओं को अच्छे में, धर्म में मोड़ देनाः

काम- अच्छी वस्तुओं की कामना करिए- सुख की, शान्ति की, दूसरों की भलाई की, विश्व में सुख-शान्ति की, धर्म की, सत्य की। धर्म को जानकर, कामना को उसके अनुसार कर दीजिए। सम्भवतः वेद ही संसार में एक ऐसा धार्मिक ग्रन्थ है जो कुछ कामनाओं को धार्मिक बताता है, उनको बढ़ावा देता है। महर्षि दयानन्द ने इसीलिए सदा कहा है कि भौतिक सुख-समृद्धि के लिए हर-सम्भव प्रयास करो। परन्तु भौतिक धनार्जन सदा धर्म की परिधि में होना चाहिए।

क्रोध- इसे सात्त्विक बनाइये- अन्याय पर क्रोध करिए, अपराध पर क्रोध करिए। धैर्य न खोते हुए, अन्याय और अपराध का सामना करिए, उनका प्रतिकार करिए। इससे शान्ति भी मिलेगी और स्वोपकार व परोपकार भी होगा।

लोभ- ज्ञान का लोभ करिए- जिस किसी से भी ज्ञान मिले उसे झट से दोनों हाथों से बटोर लीजिए। उसके लिए कष्ट उठाइये, उसके लिए रात-रात भर जागिए। परोपकार के लिए लोभ करिये। परोपकार करने का कोई अवसर मत छोड़िये, उसके लिए अवसर बनाइये।

मोह- इसे विश्वप्रेम में बदल दीजिए। एक वस्तु, एक मनुष्य में से निकालकर, मोह को सब वस्तुओं, सब मनुष्यों में उड़ेल दीजिए। ये अनायास ही धर्म की ओर ले जायेगा। आप अफगानिस्तान में मां-बच्चों के लिए प्रार्थना करेंगे, आतंकवादियों को सद्बुद्धि मिले- ये मनायेंगे, पर्यावरण के शोषण का विरोध करेंगे।

मद- आत्मविश्वास का करो। आत्मविश्वास का मद कभी न टूटे, हममें कभी हीन-भावना न हो, परन्तु कभी ये अभिमान में न बदले।

मात्सर्य- दूसरों से स्पर्धा में बदल दो- मैं अधिक अच्छा कार्य करूंगी, मैं और अधिक परिश्रम करूंगा। विचारों को इस प्रकार परिवर्तित कर देने से, फल प्राप्ति में ईर्ष्या न रहकर, स्वयं शिखर प्राप्त करने की इच्छा रह जायेगी।

वास्तव में, ये उपाय भी बहुत सरल नहीं है। इनमें भी थोड़ी विरक्ति की आवश्यकता है। परन्तु इनमें विरक्ति की मात्रा पूर्ण विरक्ति से बहुत कम है। इसलिए ये हमारी पहुंच में हैं। और यही नहीं, ये पूर्ण विरक्ति की प्राप्ति में, अपने षड्रिपुओं से युद्ध करने में एक महत्वपूर्ण कदम हैं।

❑❑

वैदिक (हिन्दू) समाज के परस्पर के संघर्ष काल में इन पुराणों तथा अन्य ग्रन्थ में बिगाड़ा गया हो, क्योंकि पुराणों में नास्तिक महात्मा बुद्ध को भी परमात्मा (विष्णु) के अवतारों में गिन रखा है और सभी अवतारों को कामी, व्यभिचारी दिखाकर भी महात्मा बुद्ध को बिल्कुल पवित्र चरित्र का दर्शाया है। लिखने वाले तो लिख गये, पर हमें तो उन हिन्दुओं की बुद्धिहीनता पर तरस आता है जो अपने आदर्श पूर्वजों (ऋषियों, देवताओं, भगवानों) को कलंकित करने वाले ग्रन्थों की भी पूजा करते हैं; भागवत् सप्ताह, जागरण के नाम पर धन की बर्बादी कर स्वयं को धन्य मान रहे हैं।

अब तो दूरदर्शन के माध्यम से पुराणों की असम्भव व अश्लील कथाएँ घर-घर तक पहुँच रही हैं एक दिन व्यास-पीठ पर विराजमान कोई नौजवान सन्त भक्त श्रद्धालुओं (अधिकतर महिलाओं) को भागवत् पुराण की रासलीला का प्रसंग सुनाने लगे, पर बड़े संकोच से भूमिका बाँधते हुए बोले- “रासलीला की कथा को बड़े पवित्र मन से सुनना चाहिए, मन में दुर्भावना (काम वासना) नहीं आनी चाहिए।...”

यह सुनकर मुझे ‘अनासक्ति योग-मोक्ष की पगदण्डी’ में लिखे ब्र. जगन्नाथ पथिक के शब्द याद आये- “रामकृष्ण परमहंस जी ने एक बार कहा था कि कामी पुरुष, कृष्ण और गोपियों के रास को देखने और श्रीमद्‌भागवत् में वर्णित उस रास-कथा को सुनने का अधिकारी नहीं है; पवित्र हृदय से ही रासलीला का रहस्य समझ में आ सकता है।’ परमहंस जी का कथन सर्वथा सत्य है, परन्तु विचारणीय तो यह है कि समष्टि-कथा में क्या देवलोग से श्रोता आयेंगे? अत्यधिक संख्या तो समष्टि कर्मों में साधारण नर नारियों की ही होती है, जो कामजित व परम-वैरागी नहीं होते। तो ऐसों के कानों में यदि सीसा नहीं तो तेल अवश्य डाल देना चाहिए, जिससे वे पुराण-गाथा को सुन ही न सकें. ... अन्यथा अनर्थ की गति अबाध हो जायेगी।”

इस रासलीला को कोई कितना ही अलौकिक प्रेम की चादर से ढकने की चतुराई करे, पर यह सीधा-सीधा व्यभिचार था, दुराचार था। तभी तो भगवत्‌कार ने श्री कृष्ण द्वारा इस कुकर्म से दूर रहना लिखा है-

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गुकृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः।।
(10-29-26)

गोपियों को रासलीला के व्यभिचार से मना करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा- “कुलीन स्त्रियों के लिए जार पुरुष की सेवा सब तरह से निन्दनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोक में अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही, इसमें प्रत्यक्ष-वर्तमान में भी कष्ट ही कष्ट है। मोक्ष आदि की बात ही कौन करे, यह साक्षात् परमभय नरक आदि का हेतु है।”

बहुत समझाने पर भी जब गोपियाँ नहीं मानी, तो भागतवकार ने उन पर श्री कृष्ण की कृपा करवा ही दी। भागवत् पुराण, अध्याय 29, स्कन्ध 10, श्लोक 46 में लिखा है-

बाहुप्रसार परिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोक हसितैर्व्रजसुन्दरीणा
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार।।

कोई भागवत् का कथावाचक पण्डित इस श्लोक का अलौकिक अर्थ करके तो दिखाए और हमारे (वस्तुतः गीता प्रेस गोरखपुर) द्वारा लिखित अर्थ का खण्डन करे या भागवत् कथा के बहाने श्रीकृष्ण जैसे आदर्श महापुरुष को कलंकित करना छोड़ दे। अब देखिये भक्ति के नाम पर पुराणों की गन्दगी का प्रचार करने का ठेका लेने वाली संस्था गीता प्रेस द्वारा लिखा हुआ अर्थ- “(यमुना के किनारे) हाथ फैलाना, आलिंगन करना, गोपियों के

हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी (नाड़ा) और स्तन आदि का स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवन से देखना और मुस्काना इन क्रियाओं के द्वारा गोपियों के कामरस को उत्तेजित करते हुए भगवान श्री कृष्ण उन्हें क्रीड़ा द्वारा आनन्दित करने लगे।”

इस कुकर्म में भी अलौकिक प्रेम देखने वाली, दिव्य दृष्टि वाले अंधे भक्त इन श्लोकों को भी देख लें- स्कन्ध 10, अध्याय 59 में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने हजारों युवतियों के साथ एक ही समय में विभिन्न रूप धारण कर विवाह किया और-

रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो
यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन्।। 43

“(श्री कृष्ण) उन पत्नियों के साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्थी में रहकर गृहस्थ धर्म के अनुसार आचरण करता हो।” और इस भोग विलास का परिणाम क्या हुआ? देखिये-

एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिश नृप।
मातरः कृष्णजतानां सहस्राणि च षोडश। (61-19)

“परीक्षित! श्रीकृष्ण के पुत्रों की माताएँ ही सोलह हजार से अधिक थी। इसलिए उनके पुत्र-पोत्रों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गयी।”

क्या यह अलौकिक प्रेम का ही परिणाम था? क्या पौराणिकों के भगवान (भोगवान) इसी काम के लिए अवतार लेते हैं? यह अच्छी भक्ति है, पग-पग पर भगवान कह रहे हैं और सांस-सास में लाँछन लगा रहे हैं?

एक बार संस्कृत अध्यापकों के सेमिनार में मैंने एक कविता बोली-

जिस देश में गंगा-दर्शन से, पाप सभी धुल जाते हों,
उस देश में बढ़ते अपराधों पर, रोक लगाना मुश्किल है।
जिस देश में ईश्वर ग्वाला बन, गोपी के संग रास करे,
वहाँ चरित्र की उज्जवलता का, दर्शन पाना मुश्किल है।।

इतना सुनते ही वहाँ बैठे 30-40 अध्यापक-अध्यापिकाओं ने मेरा विरोध करना शुरु कर दिया और चिल्लाने लगे- “यह तो हमारे धर्म पर हमला है, यह कौन बोल रहा है, इसे कुछ पता भी हे, बैठाओ इसे, ये तो आर्य समाजी विचार हैं। आदि आदि।

एक अध्यापिका बोली- आपको पता है, जब भगवान् श्रीकृष्ण ने रासलीला की, तब वे पाँच वर्ष के थे। पाँच वर्ष का बच्चा तो लड़कियों के साथ खेलता ही है, इसमें क्या बुरा है? मैंने कहा- बहिन जी, आप श्री कृष्ण को या तो भगवान मानो या पाँच वर्ष का अबोध बच्चा। भगवान तो सर्वज्ञ होता है, और रासलीला से पूर्व वह बच्चा (आपके अनुसार) गोपियों को इस कुकर्म से बचने की शिक्षा दे रहा है, कभी भागवत उठाकर पढ़ना।

एक अध्यापक बोले- चीर हरण लीला भी उन्होंने बचपन में ही महिलाओं को शिक्षा देने के लिए की थी।’ मैंने कहा- क्या यह शिक्षा देने का सही समय और सही तरीका था? यदि उन महिलाओं ने वस्त्रहीन होकर जल में स्नान करने का पाप किया था, तो उनके वस्त्र चुराकर जो पेड़ पर चढ़ बैठा और उसी अवस्था में उन्हें सिर पर हाथ जोड़कर अपने पास आने के लिए विवश करने वाला (कृष्ण) कौन सा धर्माचरण कर रहा था? महोदय, आपने केवल यह कहानी सुनी है, भागवत् नहीं पढ़ी। ज़रा किसी पण्डित से इन श्लोकों का अर्थ पूछ लेना-

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिता।।
ततो जलाशयात् सर्वादारिकाः शीतवेपिताः।

पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः।।
यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम्।
बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्त येंऽहसः
कृत्वानमोऽधोवसनं प्रगृह्यताम्।। भा.स्क. 10, अ. 22-16, 17, 19)

फिर भी आस्था के नाम पर, धर्म के नाम पर भक्ति के नाम पर हम अंधे होकर इस गन्दगी को ढो रहे हैं। गले में हाथ डाले दिखाकर हम उस आदर्श पुरूष को पक्का व्यभिचारी सिद्ध नहीं कर रहे हैं? ओ हिन्दुओं तुम्हारा विवेक कहाँ गया? जब राम के साथ सीता है, शिव के साथ पार्वती है, विष्णु के साथ लक्ष्मी है तो कृष्ण के साथ रूक्मिणी क्यों नहीं? यदि कृष्ण का राधा के साथ कोई जायज या नाजायज सम्बन्ध होता, तो महर्षि वेद व्यास महाभारत में लिखते। ओ कृष्ण भक्तों! जो दोष विरोधी होकर शिशुपाल भी श्री कृष्ण पर नहीं लगा सका, तुमने भक्त बनकर लगा दिया। क्या यही है तुम्हारी भक्ति? राधे! राधे! चिल्लाने वालो! पूरी भागवत् पढ़ जाना, कहीं राधा का नाम नहीं मिलेगा। अर्थात् यह बहुत बाद की कल्पना है और कल्पना के आक्सीजन पर जीवित रहने वाले लोग इतिहास (यथार्थ) की रक्षा नहीं कर सकते।

वृन्दावन के मन्दिर या वन में श्रीकृष्ण आज भी हर रात्रि को गोपियों के साथ रासलीला करते हैं, इस कल्पना पर रीझने वाले लोग मथुरा के इतिहास को न भूलें कि श्रीकृष्ण के, औरंगजेब के समय (17वीं शताब्दी) तोड़े गये, मन्दिर के ऊपर आज भी मस्जिद खड़ी है। क्या भगवान का काम केवल रासलीला का चमत्कार दिखाना (जिसे आज तक किसी ने नहीं देखा) ही रह गया है?

(क्रमशः)

❑❑

(पृष्ठ 5 का शेष)

लगभग प्रत्येक वैज्ञानिक की कुछ मान्यतायें आने वाले वैज्ञानिकों ने अस्वीकार या खण्डित की हैं सभी वैज्ञानिकों में भी मतान्तर है। किसी विषय में कहीं एक मान्यता नहीं है, किन्तु उससे न तो पूर्व वैज्ञानिकों का महत्व कम हुआ और न वह उनकी निन्दा की बात है। ठीक इसी प्रकार यदि कोई वैदिक वैज्ञानिक तथ्य वर्तमान विज्ञान से मेल नहीं खाता तो उससे न तो समग्र साहित्य का महतव कम होता है, और न यह निन्दा या बवण्डर उठाने की बात है। मान्यताओं, स्थापनाओं और वैज्ञानिक सिद्धान्तों में मतान्तर रह ही जाता है और रहेगा। दयानन्द प्रकृति वैज्ञानिक नहीं थे। वे वेद-शास्त्रों में पारंगत ऋषि थे। यदि उनके द्वारा उद्धृत कोई प्रकृति-सम्बन्धी प्राचीन वचन गलत भी सिद्ध होता है तो न तो उसका उत्तरदायित्व उन पर आता है और न उनके शास्त्रीय पाण्डित्य का महत्त्व कम होता है। उनका अपना विषय वेदादि-शास्त्र विषयक है। वे शास्त्रीय वचनों को प्रमाण मानकर उद्धृत करते हैं।

जो लोग इस उद्धरणात्मक प्रसंग को प्रस्तुत करके विरोधात्मक बवण्डर उठाते हैं वे ज्ञान-विज्ञान की शोध मर्यादा एवं परम्परा का ज्ञान नहीं रखते। क्या वे उन वैज्ञानिकों की निन्दा करते हैं जिनकी खोज या सिद्धान्त दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा खण्डित हो चुके हैं? क्या संसार फिर भी उनकी सम्मानपूर्ण गणना वैज्ञानिकों में नहीं करता? जो लोग इस प्रकार की उद्धृत बातों को आधार बनाकर ऋषि का विरोध करते हैं उनके विरोध के पीछे उनकी तुच्छ बृद्धि की सोच और ईर्ष्या-द्वेष की भावना होती है। वे अपनी औकात को भी भूल जाते हैं कि वे इस विषय पर समालोचना करने के पात्र भी हैं या नहीं।

❑❑

हिन्दू विद्वानों के लिए विचारणीय विषय

(कृष्ण चन्द्र गर्ग, पंचकूला)

1. ईश्वर एक है, अनेक नहीं। वह निराकार और सर्वव्यापक है। उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। न तस्य प्रतिमाऽस्ति - (यजुर्वेद 32,3) ईश्वर अपने सभी काम स्वयं करता है। उसके कोई पीर, पैगम्बर, अवतार या एजेंट नहीं हैं।

2. मूर्तिपूजा हिन्दुओं की सबसे बड़ी अज्ञानता है। इसने हिन्दुओं का सबसे अधिक अहित किया है। मूर्तिपूजा के कारण हिन्दू ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं, और परोपकार आदि शुभ कर्मो से दूर हो गये हैं। जो तन, मन, धन इन्सानों की सेवा में लगना चाहिए था वह पत्थर की मूर्तियों पर लग रहा है। मुसलमानों ने सैकड़ों सालों तक हजारों मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा और वहां से बेशुमार सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि लूटकर वे अपने देशों को ले गये हैं।

3. मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम और योगेश्वर श्री कृष्ण ईश्वर न थे और न ही ईश्वर के अवतार थे। वे महापुरुष थे। वे अपने माता-पिता से जन्मे, बड़े हुए, उनके विवाह हुए, उनके संतानें हुईं। उन्होंने भी कार्य किए और सुख-दुःख भोगे। अन्त में वे भी मृत्यु को प्राप्त हुए। उन्हें याद करने का अर्थ है कि उनके सद्गुणों को हम अपने जीवन में धारण करें।

4. योगेश्वर श्री कृष्ण- महाभारत में श्री कृष्ण जी का जीवन बड़ा पवित्र बताया गया है। उन्होंने जन्म से मृत्यु तक कोई भी बुरा काम किया हो ऐसा नहीं लिखा। वे एक पत्नीव्रती थे, उनकी पत्नी थी रुक्मणी। वे सुदर्शन चक्रधारी, योगेश्वर, नीतिनिपुन, पाण्डवों को युद्ध में विजय दिलाने वाले, कंस, जरासंध आदि दुष्ट पापाचारी राजाओं का वध करने वाले थें

परन्तु भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्री कृष्ण जी पर दूध-दही-मक्खन की चोरी, कुब्जा दासी से संभोग, परस्त्रियों से रासलीला-क्रीड़ा आदि झूठे दोष लगाए हैं। गोपाल सहस्रनाम में श्री कृष्ण जी को चौरजारशिखामणि तक का खिताब दिया गया है जिसका अर्थ है चोरों और जारों का सरदार। ऐसी बातों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर दूसरे मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निंदा करते हैं। और हिन्दुओं का मजाक उड़ाते हैं।

हिन्दुओं को श्री कृष्ण जी के उसी रूप को स्वीकार करना चाहिए जो महाभारत में वर्णित है।

5. देवी, देवता- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश आदि एक ईश्वर के ही नाम हैं। ये कोई अलग से देवता नहीं हैं। देवी या देवता वह है जो हमें कुछ देता है। हमारे माता-पिता देवता हैं, वे हमें जन्म देकर हमारा पालन-पोषण करते हैं हमारा अध्यापक देवता है, वह हमें विद्या और शिक्षा देता है। कोई भी परोपकारी व्यक्ति देवता है, वह संसार का भला करता है।

6. सुख-दुख का कारण मनुष्य के अपने अच्छे-बुरे काम हैं, ग्रह नहीं। ग्रह तो जड़ हैं, ज्ञानहीन हैं और बुद्धिहीन हैं। वे किसी से प्रेम अथवा द्वेष नहीं कर सकते। ईश्वर की न्याय व्यवस्था से- दूसरों का भला करने से सुख प्राप्त होता है और दूसरों का बुरा करने से दुख मिलता है।

7. ज्योतिष नाम से चल रही भविष्य बताने की

और पाप कर्म के फल से बचाने की दुकानें सब ठग विधा है। इसमें फंसना अपना धन बर्बाद करना और परेशानी मोल लेना है। ईश्वर की व्यवस्था में मनुष्य दखल नहीं दे सकता।

8. ईश्वर हमारा माता-पिता है। हर समय वह हमारे साथ है। हमारे और ईश्वर के बीच में कोई और बिचौलिया नहीं बन सकता।

9. जो मर चुके हैं उनका श्राद्ध नहीं हो सकता। जीवित बुजुर्गों की सेवा करना ही उनका श्राद्ध है। जैसे हमें बचपन में उन्होंने पाला है वैसे ही बुढ़ापे में उनकी देखभाल करना हमारा कर्त्तव्य है।

10. जगराता पापकर्म है। लाउडस्पीकर की ऊँची आवाज में दूसरों को परेशान करना ईश्वर भक्ति नहीं है। ईश्वर अन्तर्यामी है। हमारे मन में जो है उसे भी वह जानता है। जगराते में सुनाई जाने वाली तारा देवी की कहानी बहुत ही घटिया, असम्भव और विनाशकारी है।

11. फूल तोड़ना पाप कर्म है। डाली पर लगा हुआ फूल सुगन्ध और शोभा देता है। तोड़ने के थोड़ी देर बाद वह दुर्गन्ध देना शुरु कर देता है। पानी में सड़कर तो और अधिक दुर्गन्ध देता है।

12. मांस खाना महापाप कर्म है। मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। मांस मनुष्य के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हानिकर है। पशु जब अपने को मारे जाने की स्थित में देखते हैं तब उन्हें जो कष्ट होता है उसे याद करके भी मनुष्यों को मांस नहीं खाना चाहिए। इंग्लैण्ड की साऊथैम्पटन यूनिवर्सिटी में किए परीक्षण के अनुसार शाकाहारियों का समझदारी का स्तर मांसाहारियों से 5 प्रतिशत अधिक होता है।

13. कोई व्यक्ति धार्मिक है या नहीं- यह उसके आचरण और व्यवहार से पता चलता है, दिखावे के बाहरी चिन्हों से नहीं। सत्य का आचरण और पक्षपात रहित व्यवहार ही धर्म है और यही मानव धर्म है।

14. कलियुग कुकर्म करने का ठेका नहीं है। जैसे सोमवार, मंगलवार आदि दिनों के नाम हैं वैसे ही सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग समय की गणना के नाम हैं। कलियुग से डरने का कोई कारण नहीं है। जैसे अच्छे और बुरे काम हर दिन होते हैं, ऐसे ही अच्छे और बुरे काम सब युगों में होते हैं।

15. नदी, तालाब आदि में नहाने से पाप नहीं कटते और न ही मन शुद्ध होता है। कर्मों का फल भोगे बिना नहीं कटता। जैसी करनी वैसी भरनी, जो बोआ सो काटा। मन सत्य के आचरण से शुद्ध होता है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

16. किस्मत या भाग्य- ईश्वर हमारे कामों के अनुसार हमें सुख व दुख के रूप में फल देता है- अच्छे कामों का फल सुख और बुरे कामों का फल दुख। कुछ कामों का फल उसी समय मिल जाता है और कुछ कामों का फल बाद में उचित अवसर आने पर मिलता है। जो फल हमें बाद में मिलता है उसे हम किस्मत या भाग्य कहते हैं।

17. हमारे धर्म ग्रन्थ चार वेद हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। वेद ज्ञान के पुस्तक हैं जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार ऋषियों- अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा को दिया। वेदों में सभी मनुष्यों के कल्याण के लिए उत्तम-उत्तम उपदेश हैं, जन्म से मरण तक मनुष्यों को जीने का सही-सही ढंग बताया गया है।

कुछ लोग वेदों पर मांसाहार, सुरापान, गोहत्या आदि के झूठे दोष लगाते हैं। वेदों में ऐसी अनर्गल

बाते नहीं हैं। वेदों में गाय आदि गुणकारी पशुओं की रक्षा के आदेश हैं, मदिरापान व मांसाहार का निषेध है।

पुराण हमारे धर्म ग्रन्थ नहीं हैं। यह ग्रन्थ अश्लील और गलत बातों से भरे हुए हैं पुराण महर्षि वेदव्यास के बनाये हुए नहीं हैं। बहुत बाद में बने ग्रन्थ हैं ये। महर्षि वेदव्यास तो बहुत बड़े विद्वान्, धार्मिक, सदाचारी और परोपकारी पुरूष थे। वे ऐसे गपौड़ें नहीं घड़ सकते थे।

18. शिवलिंग पूजा अश्लील और अशोभनीय कार्य हैं।

19. हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं। चार वेद, छः शास्त्र, ग्यारह उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता आदि सभी ग्रन्थों में हमारा नाम आर्य लिखा है, हिन्दू नहीं।

20. पुण्य, पाप- जिस काम से दूसरों का भला हो वह पुण्य और जिस काम से दूसरों का अहित हो वह पाप कहलाता है।

21. हिंसा, अहिंसा- किसी से वैर भाव रखना हिंसा कहलाती है। किसी निर्दोष को दण्ड देना हिंसा है, परन्तु दोषी को दण्ड देना हिंसा नहीं, अहिंसा है।

22. स्वर्ग, नरक- स्वर्ग या नरक नाम के कोई अलग से विशेष स्थान नहीं हैं। विशेष सुख का नाम स्वर्ग है और विशेष दुःख का नाम नरक है।

23. तप क्या है- परोपकार आदि अच्छा काम करने में जो बाधाएं और कष्ट आएं उन्हें सहन कर लेना तप कहलाता है।

24. व्रत- कोई भी अच्छा काम कर लेने का प्रण कर लेना और उसे निभाना व्रत कहलाता है।

25. इस्लाम कोई धर्म नहीं है, यह अत्याचारी व्यवस्था है। गैर मुसलमानों को तड़पाना, मारना, उनकी धन-सम्पत्ति लूटना, उनकी औरतों और लड़कियों से बलात्कार करना, तलवार के जोर से उन्हें मुसलमान बनाना, हिन्दुओं के मंदिरों-मूर्तियों को तोड़ना, लूटना और वहां पर मस्जिदें बनाना- ये सब काम इस्लाम में बड़े पुण्य के माने जाते हैं। तेरह सौ साल तक हिन्दुओं ने यह सब भोगा है। हिन्दुओं को अब सावधान रहने की जरूरत है।

26. कबर पूजा- हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले मुसलमानों की कबरों को हिन्दू ही पूजते हैं।

अजमेरी की दरगाह शरीफ में सूफी संत मुइनुद्दीन चिश्ती की कबर है। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती 800 वर्ष पहले भारत आया था उसने यहां पर 700 हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था।

बहराईच, उत्तर प्रदेश के पास मसूद गजनी की मजार है। मजूद गजनी, सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ने और लूटने वाले महमूद गजनी का बेटा था। जून 1033 में मसूद ने भारत पर आक्रमण किया था, परन्तु वह मारा गया था। हिन्दू उसकी मजार से मन्नतें मांगते हैं।

महाराष्ट्र के एक गाँव में अलीशाह की मजार है। अलीशाह बड़ा अत्याचारी था। विवाह के पश्चात् हिन्दू दुल्हनों को पहली रात अलीशाह के साथ गुजारनी पड़ती थी। औरंगजेब का समय था और हिन्दू मजबूर थे। अब हिन्दू औरतें उस अलीशाह की कबर को पूजती हैं।

27. प्राणीमात्र के दुख दूर करना ही मनुष्य का परम धर्म है। जो व्यक्ति समाज से अज्ञान, अन्याय और दरिद्रता दूर करता है वही ईश्वर भक्त है।

❑❑

क्या हम मनुष्य हैं?

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

मनुष्य कौन है, कौन नहीं? मनुष्य किसे कहते हैं व मनुष्य की परिभाषा क्या है? हम समझते हैं कि यदि सभी मत-मतान्तरों के व्यक्तियों से इसकी परिभाषा बताने को कहा जाये तो सब अपनी-अपनी अलग परिभाषा करेंगे। वह सब ठीक भी हो सकती हैं परन्तु हम अनुभव करते हैं कि सर्वांगपूर्ण परिभाषा वह नहीं दे सकेंगे। परन्तु जब हम अन्य मत व देशवासियों द्वारा दी जाने वाली सभी सम्भावित मनुष्य की परिभाषाओं पर विचार कर महर्षि दयानन्द की परिभाषा पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि महर्षि दयानन्द की परिभाषा सबसे भिन्न व सर्वांगपूर्ण परिभाषा है। आईये, देखते हैं कि महर्षि दयानन्द ने मनुष्य की क्या परिभाषा की है? महर्षि दयानन्द स्वमन्तव्यामन्तव्य में मनुष्य की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि "मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुख व हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे वह महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हो उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवे।" इसी क्रम में महर्षि दयानन्द ने भतृहरि महाराज, महाभारत एवं उपनिषद् आदि के कुछ प्रसिद्ध श्लोक व वाक्य लिखे हैं जो सभी अत्यन्त महत्वपूर्ण, उपयोगी एवं आचरणीय हैं। मनुष्य की यह परिभाषा महर्षि दयानन्द, वैदिक काल व महाभारत काल के अनेक ऋषियों पर सत्य चरितार्थ होती है। देश की आजादी के लिए साम्राज्यवादी अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति की गतिविधियों से जुड़े अनेक व सभी क्रान्तिकारियों पर भी इस परिभाषा का प्रभाव देखा जा सकता है। आईये, हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा पर विचार करते हैं।

पहले हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा की पहली पंक्ति के शब्दों को लेते हैं। महर्षि लिखते है कि 'मनुष्य' उसी को कहना कि जो मननशील होकर सवात्मवत् दूसरों के सुख-दुख व हानि-लाभ को समझे। महर्षि के इन शब्दों का विशेष महत्व है। महर्षि ने देखा था कि हम लोग प्रायः मननशील वा मनस्वी नहीं थे। आज भी धर्म-कर्म के क्षेत्र में यही स्थिति जारी है। हमें अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति वा मनुष्य को मननशील होकर सत्यासत्य का निर्णय करने की क्षमता से युक्त होना चाहिये, यही मननशील होने का मुख्य प्रयोजन है जिससे कोई हमारा शोषण न कर सके या हम किसी का अन्धभक्त न बन सकें। ईश्वर से हमें बुद्धि व मन इसी लिए मिला है कि हम सत्य व असत्य को जानें, सत्य को स्वीकार करें व असत्य का त्याग करें। यदि हमारे अन्दर यह गुण आ जाये तो हमारे व्यक्तित्व व चरित्र का सकारात्मक निर्माण व उन्नति होती है। और इसके विपरीत यदि हम किसी गुरू, धार्मिक या राजनैतिक, के अन्धानुयायी हो जाते हैं तो हमारा नैतिक वा चारित्रिक पतन होता है। मनन का अर्थ एक-एक करके सभी उपयोगी विषयों

का चिन्तन करना होता है। इसके लिए स्वाध्याय भी सहायक है ओर किसी विषय के विशेषज्ञ से वार्तालाप या उपदेश श्रवण भी उपयोगी होता है। हम समझते हैं कि महाभारत काल से लेकर सन् 1875 तक, देश व विश्व के लोगों का दुर्भाग्य था कि उनके पास सत्यार्थ प्रकाश जैसा कोई ग्रन्थ नहीं था। सन् 1875 में सत्यार्थ प्रकाश अस्तित्व में आया और तब से जिन लोगों ने इसका अध्ययन किया व इसे अपने जीवन का अंग बनाया, उनके जीवन व कार्य में एक नवीनता, विशेषता व अन्यों से गुण-कर्म-स्वभाव में भिन्नता व अन्तर दिखाई दिया। हमारा निजी मत है कि महर्षि दयानन्द ने जो सन्ध्या व यज्ञ की विधि लिखी है व अपने ग्रन्थों मे इन यज्ञों पर प्रकाश डाला है, जो लोग इन्हें जानते व समझते हैं व इसको दैनन्दिन व समय-समय पर करते-कराते रहते हें उनके जीवन अन्य अपने निकटस्थों, परिवार व समाज से कुछ अन्तर लिखे हुए होते हैं ऐसे लोगों का वर्तमान जीवन भी अच्छा व्यतीत होता है और इसके बाद के जीवन में भी उनका पुनर्जन्म संवरता व उन्नत होता है।

महर्षि दयानन्द के समय में हमारे भारत के लोग दूसरों के सुख-दुःख व हानि लाभ को स्व आत्मवत् नहीं समझते थे। बहुत से लोगों को अपना हित व स्वार्थ ही प्यारा होता है। वह अपने स्वार्थ व हित से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। वह यह विचार नहीं करते कि उनके कार्यों से दूसरों के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है या पड़ सकता है। इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं होती उन लोगों को तो यह भी विदित नहीं होता कि वह गलती पर हैं। वह अपनी अज्ञानता के वशीभूत होकर अपनी हित साधना व स्वार्थ सिद्धि के कार्यों में लगे रहते हैं। ऐसे लोगों से जहां एक ओर कुछ व कई लोगों का अहित होता है व उनके स्वार्थों को हानि पहुंचती है वहीं दूसरी ओर इस मनुष्य के स्वभाव मनुष्यता के दर्शन न होकर उनमें पशुता के दर्शन होते हैं महर्षि दयानन्द ने अपने साहित्य में लिखा है कि जो मनुष्य केवल अपने ही स्वार्थ में प्रवृत्त होता है व दूसरों के हितों की अनदेखी करता हे, मानों वह पशुओं का भी बड़ा भाई है। पशुओं का अपना एक स्वभाव होता है। कुछ पूर्ण शाकाहारी हैं तो कुछ पूर्ण मांसाहारी। इनमें एक ही जाति के पशुओं के स्वभाव में कुछ भिन्नता वाले पशु होते हैं। पशु तो पशु हैं, इनमें बुद्धि नहीं है। मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धि दी है जिससे वह मननशील होता है अर्थात् चिन्तन व मनन करता है या कर सकता हैं यदि वह ऐसा नहीं करता व एकतरफा अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही लगा रहता है तो मननशील न होने के कारण व पशु श्रेणी में आता है। स्व-आत्मवत् अन्य प्राणियों के सुख-दुःख व हानि-लाभ को समझना धर्म है और उसके विपरीत आचरण अधर्म है। दूसरों के प्रति सहानुभूति व संवेदना का व्यवहार करना ही स्वात्मवत् व्यवहार है। अतः मननशील होकर विवेक बुद्धि से स्व-आत्मवत् स्वभाव व कर्मो का करना ही मनुष्य का स्वात्मवत एक गुण व धर्म है। हम सभी को इसे जानकर व आचरण में धारण कर अपने जीवन को सफल बनाना है।

मनुष्य होने की एक कसौटी उसका अन्यायकारी बलवान से न डरना और धर्मात्मा निर्बल से भी डरना महर्षि दयानन्द बताते हैं। अन्याय करना अधर्म का प्रतीक है और न्याय धर्म का प्रतीत होता है। न्याय व अन्याय का बोध सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ, न्याय दर्शन व समस्त वैदिक साहित्य को पढ़ने से होता है। वैदिक विद्वानों की शरण में जाने व उनके उपदेशामृत से भी न्याय व अन्याय का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। न्याय व धर्म एक दूसरे के पूरक व पर्याय हैं व इसी प्रकार अन्याय व अधर्म भी एक दूसरे के पूरक व पर्याय हैं। अन्यायकारी बलवान से न डरने का मतलब

है कि अपने प्राणों की चिन्ता छोड़ अन्यायकारियों से धर्मात्माओं की रक्षा करना, उन्हें अज्ञान, अन्याय व शोषण आदि से मुक्त करना व कराना है। अन्यायकारी प्रायः असत्य का आचरण करते हैं व मनुष्य वह है जो अन्याय का त्याग कर न्याय, पक्षपातरहित होकर आचरण करें। यही सत्याचरण व धर्म होता है। आज समाज में सर्वत्र अन्याय, अत्याचार, पक्षपात, स्वार्थ, शोषण व अज्ञानता व्याप्त है। यह एक बहुत बड़ी चुनौती आज मननशील व विवेकशील मनुष्यों पर है कि वह व्यवस्था में सुधार करें। स्वामी दयानन्द ने अपने समय की व्यवस्था में जो-जो असत्य व बुराईयां देखी थी, उनका निर्भिकता से दिग्दर्शन कराया था और असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन किया था। आज भी आवश्यकता है कि हम असत्य से समझौता करने व मौन रहने की अपेक्षा उसका प्रकाश व प्रचार करें और मन, वाणी, वचन व कर्म, लेखन व उपदेश आदि से जो भी बन पड़े उसे निर्भिकता से करना चाहिये। ऐसा करना ही अज्ञान, अन्याय, अभाव, स्वार्थ व शोषण से मुक्त समाज का आधार हो सकता है। महर्षि दयानन्द ने धर्मात्माओं से डरने की जो बात कही है उसके पीछे यह कारण अनुभव होता है कि धर्मात्माओं में ईश्वर प्रदत्त ज्ञान व बल छुपा होता है। यदि हम डरेंगे तो उनके निकट होकर उनकी संगति से लाभ उठा सकते हैं और नहीं डरेंगे तो उनसे अन्याय कर बेठेंगे जिससे वर्तमान व भविष्य में हमारी ही हानि है अर्थात् धर्मात्मा को प्राप्त होने वाले ज्ञान व अपवर्ग से हम वंचित रहेंगे। इसके साथ अधर्मात्मा अर्थात् अधर्मी होने से हमें अवनति, आध्यात्मिक व सामाजिक, का सामना करना होगा।

मनुष्य की परिभाषा में महर्षि दयानन्द ने यह भी जोड़ा है कि "इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे वह महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रिचारण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे।" अनाथ, निर्बल व गुण रहित धर्मात्माओं की रक्षा, उन्नति व प्रियाचरण से हमें धर्मात्माओं का आशीर्वाद व शुभकामनायें प्राप्त होती हैं जिससे हमारी आयु, विद्या, धन व बल में वृद्धि होती है। धर्मात्माओं की रक्षा व उन्नति होने से इनकी संख्या बढ़ेगी व अधिर्मियों की संख्या में कमी आयेगी। यदि हम एक भी धर्मात्मा बनाने में सफल होते हैं तो इसका अर्थ है कि हमने एक अधर्मात्मा को कम किया है। अब यह हो सकता है कि यह धर्मात्मा न जाने कितने धर्मात्मा बना दें। गुरू विरजानन्द व स्वामी दयानन्द का उदाहरण हमारे सामने है। गुरू विरजानन्द ने एक धर्मात्मा स्वामी दयानन्द को बनाया और स्वामी दयानन्द ने गुरू के सन्देश को न केवल देश में ही अपितु सारे संसार में प्रचारित व प्रसारित कर दिया। महर्षि दयानन्द आगे कहते हैं कि अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें। इसका कारण है कि अधर्मी मनुष्य समाज में नहीं होने चाहिये। और यदि वह हो तो अलग-थलग पड़ जायें और विवश होकर अपना आचरण बदल लें यदि उनके प्रति अच्छा व्यवहार करेंगे तो समाज में असमानता व असन्तुलन उत्पन्न होगा जो कि ईश्वर और वेद की शिक्षाओं के विरुद्ध है। महर्षि मनु ने इसी लिए कहा है कि जो मनुष्य वेदाध्ययन व सन्ध्योपासना, यज्ञ आदि नहीं करता वह जीवित ही शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। वह द्विजों के अधिकारों से वंचित हो जाता है अथवा उसको वंचित कर देना चाहिये। ऐसा तभी सम्भव है जब कि हमारा राजा वेदों

का विद्वान् व उनका आचरण करने के प्रति कटिबद्ध हो। प्रयास करने से कार्य की सफलता सहित सभी कुछ सम्भव है। हमारा राजा वेदों का विद्वान होगा तब सभी को पूर्ण सुख होने की सम्भावना होती है। ऐसा होने पर ही वेदानुसार आध्यात्मिक क्रान्ति सम्भव है। इसके बिना देश व समाज सफलता के शिखर पर नहीं पहुंच सकते। जब देश भर में सभी वेदाज्ञा का पालन करने वाले धार्मिक होंगे तभी सर्वत्र सुख व शान्ति हिलोरें लेंगी। हम समझते हैं कि अधर्मी चक्रवर्ती राजा व अधर्मी महाबलवान व गुणवान लोगों को प्रजा के द्वारा विरोध, अवनति और अप्रियाचरण से ही बदला जा सकता है या उन्हें सत्य के आचरण में प्रवृत्त किया जा सकता है। अपने समय की परिस्थितियों व इतिहास की घटनाओं का अध्ययन व मूल्यांकन कर ही महर्षि दयानन्द ने यह पंक्तियां लिखी हैं। मनुष्य के बारे में इतना लिखने के बाद भी महर्षि दयानन्द कुछ छूट देते हुए प्रतीत होते हैं और कहते हैं कि यदि उन्होंने जो कर्तव्य कहे हैं, वह न कर सकें तो कम से कम सभी मनुष्यों से जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा करनी चाहिये। हम समझते हैं कि संसार के सभी देशों में न्याय व्यवस्था स्थापित हैं जिसका एक मात्र उद्देश्य ही अन्यायकारियों को अन्याय न करने देना, उनके बल की हानि करना और न्यायकारियों के बल व सामर्थ्य की उन्नति करना ही है। महर्षि दयानन्द के समय में विदेशी सरकार थी जो यहां के मनुष्यों के प्रति अन्याय का व्यवहार करती थी। देशवासियों को अंग्रेजों के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए प्रेरणा स्वरूप ही यह वाक्य लिखे गये थे। हम समझते हैं कि आर्य समाज के अनुयायियों पर इन पंक्तियों का प्रभाव पड़ा भी था इसी कारण आजादी के आन्दोलन में आर्य समाज के अनुयायियों की संख्या 80 प्रतिशत व इससे भी अधिक स्वीकार की गई है। इन विचारों का ही परिणाम है कि महर्षि दयानन्द के दो साक्षात् शिष्यों महादेव गोविन्द रानाडे और श्यामजी कृष्ण वर्मा व उनके शिष्यों गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गांधी तथा वीर विनायक सावरकर आदि द्वारा अहिंसात्मक एवं क्रान्तिकारी आन्दोलन की नींव पड़ी जिसे अनेक देशवासियों ने सिंचित किया, पल्लवित व पोषित किया और देश को स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई। अतः सभी को अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति करने का सदैव प्रयत्न करना चाहिये जिससे देश की आजादी सुरक्षित रहे।

महर्षि दयानन्द मनुष्य के गुणों या कर्त्तव्यों का उल्लेख कर अन्त में कहते हैं कि इस काम, अन्याय, को समाप्त करने, में चाहे किसी मनुष्य को कितना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे उसके प्राण भी भले ही चले जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवे। हम आज के समाज में मनुष्यों में महर्षि दयानन्द द्वारा परिभाषित मनुष्यों के गुणों व विशेषताओं का प्रायः अभाव ही देख रहे हैं। इसी कारण देश में नाना प्रकार की समस्यायें हैं। हम समझते हैं कि यदि हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा के अनुरूप मनुष्य बनायें है। इसी कारण देश में नाना प्रकार की समस्यायें हैं। हम समझते हैं कि यदि हम महर्षि दयानन्द की परिभाषा के अनुरूप मनुष्य बनायें तो देश की सारी समस्यायें हल हो सकती हैं और यह विश्व के लिए एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वह सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन के साथ मनुष्य की पूरी परिभाषा को पढ़ें। महर्षि दयानन्द ने मनुष्य की उपर्युक्त परिभाषा के अतिरिक्त शास्त्रों के जिन श्लोकों व संस्कृत के वाक्यों को लिखा है, उन पर भी मनन करना चाहिये और उसे क्रियान्वित करने में अपना सहयोग देना चाहिये। ❑❑

सबका मालिक एक : बनाम शंकराचार्य का बयान

(आचार्य डॉ. अजय आर्य, गणपति विहार, बोरसी चौक दुर्ग)

- किसी भी व्यक्ति की पूजा नहीं होनी चाहिए।
- ईश्वर अवतार नहीं लेता।
- एक ही ईश्वर के अनेक नाम हैं।
- धर्म का कारोबार देश के कोने-कोने में खड़ा है।
- साईं को मानने से ज्यादा जरूरी है, साईं की बातों को मानना।

पिछले 23 जून से समाचार पत्रों में पूजय शंकराचार्य स्वामी स्वरूपनानन्द जी के बयानों की चर्चा हो रही है। इस बयान में शंकराचार्य जी ने साईं पूजा का विरोध किया है। स्वामी जी का बयान मुझे कुछ दृष्टि से एकांगी मालूम हो रहा है, इसलिए मैं अपनी कलम उठाने के लिए उद्यत हुआ हूं। स्वामी जी ने कहा है कि साईं ईश्वर नहीं है। इस बात में किसी की कोई दो राय नहीं हो सकती। इस बात पर तो स्वयं साईंभक्त भी एक मत हैं, फिर बयान पर बवाल क्यों मचा हुआ है। साईं की उपलब्ध जीवनी के अध्ययन से पता चलता है कि वर्तमान द्वारका माई में स्वयं साईं ही श्री कृष्ण का मंदिर बनाना चाहते थे। इसका एक सीधा सा अर्थ यह है कि साईं भी आस्थावान थे। राम और कृष्ण के प्रति उनकी भी श्रद्धा थी, जैसा कि आम लोगों में है।

शंकराचार्य स्वामी स्वरूपनानन्द जी इस हेतु के लिए ''शिरडी के साईं'' को ही उद्धृत किया है। साईं अपने पूरे जीवन काल में सतत एक ही उपदेश या सन्देश भक्तों अथवा श्रद्धालुओं को देते रहे हैं - 'सबका मालिक एक।' यह उपदेश के वेद के सन्देश के बहुत निकट है। वेद कहता है कि उस एक ईश्वर के अनेक नाम हैं। **स ओत प्रोतश्च विभुः** वह ईश्वर संसार में ओत प्रोत है। **एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति -** उस एक ईश्वर को विद्वान लोग अनेक नामों से जानते या पुकारते हैं। शंकराचार्य स्वामी स्वरूपनानन्द जी ने स्वयं इसकी व्याख्या करते हुए सवाल किया है सबका मालिक एक। इसका अर्थ है कि सबका ईश्वर एक ही है। सनातन परम्परा की सहिष्णुता के पीछे यही एक मूल भावना है - हम यह मानते हैं कि हम सबकी राह अलग-अलग हो सकती है किन्तु हमारा गंतव्य एक ही है। **नृणामेको गम्यः।** उन्होंने पूछा है कि सबका मालिक एक कहने से जो सब शब्द का उच्चारण होता है, उसका अर्थ क्या है? क्या इस सबमें स्वयं साईं सम्मिलित नहीं है। सिद्ध संतों की बातें बहुधा साधारण बुद्धि से समझ नहीं आती। राम और कृष्ण सहित सभी अराध्य (शंकराचार्य अवतारों में गिने जाते हैं) उस एक ईश्वर की आराधना करते रहे हैं। स्वामी जी ने यह भी सवाल किया है कि साईं को मुसलमान नहीं मानते, इसलिए हिन्दुओं को भी नहीं मानना चाहिए। यह तर्क तो बड़ा खोखला है क्योंकि शंकराचार्य जिस गद्दी पर बैठे हैं, उनके संस्थापक शंकराचार्य आद्यगुरु शंकराचार्य कहे जाते हैं। आदि गुरु का अर्थ है पहला गुरु। क्या शंकराचार्य जी ने बिना गुरु के ही ज्ञान प्राप्त कर लियाथा? अगर उनके गुरु थे तो शंकराचार्य को आदिगुरू कहकर कैसे संबोधित किया जा सकता है? शंकराचार्य जी को जगद्गुरु भी कहा जाता है। क्या जगद्गुरु का अर्थ होता है - जगत का गुरु। क्या सचमुच शंकरचार्य जगत के गुरु हैं। क्या उन्हें मुस्लिम, पारसी, बौद्ध अथवा आर्यसमाजी अपना 'गुरु' मानते हैं। हिन्दुओं के सर्वोच्च गुरु होने के बाद भी राधा स्वामी, कबीरपंथ जैसे अनेक सम्प्रदायों, विचारों अथवा गुरुओं को मानने वाले शंकराचार्य को अपना गुरु नहीं मानते। क्या ऐसे

में यह जगद्‌गुरु शब्द झूठा साबित नहीं होता। अगर शंकराचार्य सचमुच देश या समाज को राह दिखाना चाहते हैं तो उन्हें जगद्‌गुरु और आद्‌यगुरु इन दोनों शब्दों के विरुद्ध एक जनमत तैयार करना चाहिए। इस प्रसंग में मैं माननीय राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी की प्रशंसा करना चाहूंगा जिन्होंने महामहिम जैसे महिमामंडित करने वाले विशेषण को तिलांजलि दी।

शंकराचार्य जी का यह सवाल भी तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता कि साईं अवतार या गुरु नहीं हैं। इसलिए उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए। आप जिन चौबीस अवतारों मो मानते हैं, उनमें बुद्ध की भी गणना होती है। बुद्ध को नास्तिक कहा जाता है क्योंकि उन्होंने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया था। इसी दृष्टि के कारण बौद्ध तथा जैन दर्शन को नास्तिक दर्शन के रूप में जाना जाता है। यहां सवाल यह उठता है कि हमें अवतारों की पूजा करनी चाहिए या उनके बताए मार्गों पर चलना चाहिए। अगर उनके बताए मार्गो पर चलना चाहिए तो क्या बुद्ध की बातों का अनुसरण करके सबको नास्तिक नहीं हो जाना चाहिए। अगर बुद्ध अवतार हैं तो वे ईश्वर के अवतार हैं। क्या ईश्वरीय सत्ता की बात नहीं माननी चाहिए? आपके तमाम सनातन ग्रन्थ ईश्वर को 'अजन्मा' मानते हैं। वेद, उपनिषद् में इसीलिए ईश्वर को 'अज' कहकर पुकारा गया है। 'आज' अर्थात् जिसका जन्म नहीं होता। हम जिसे मान लें, वह अवतार तुम जिसे मानों वह अवतार नहीं - इस स्वार्थ भरे छंटन के सहारे कभी भी ईश्वरीय सत्य के निकट नहीं पहुंचा जा सकता। अवतारवाद ने ही अन्धविश्वास तथा व्यक्ति पूजा को बढ़ावा दिया है।

आप कहते हैं कि साईं मांसाहारी थे इसलिए उनकी पूजा नहीं की जानी चाहिए। आप जिस संत परम्परा को स्वीकार करते हैं क्या उस परम्परा में अघोरी-संतों को मान्यता नहीं दी जाती? शायद पाठक अघोरी साधना या परम्परा से परिचित नहीं होंगे इसलिए इसे स्पष्ट करना जरूरी होगा। अघोरी संतों की साधना बहुत ही कठिन होती है। इन साधकों के लिए कुछ भी अस्वीकार्य नहीं होता। वे सृष्टि के प्रत्येक तत्व में ऐ ही तत्व को देखने के अभ्यासी होते हैं। उनके संबंध में कहा जाता है कि वे श्मशान में साधना करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर मुर्दो को भी खा जाते है। ये मल-मूत्र को भी स्वीकार कर लेते हैं साधारणतः ऐसे संत बहुत ही दुर्लभ होते हैं। इसलिए कुछ लोग इनकी मान्यता का लाभ उठाने के लिए स्वयं को अघोरी सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। मुझे ब्रह्मानंद आश्रम में पूज्य स्वामी बलेश्वरानंद सरस्वती जी महाराज ने एक संस्मरण सुनाया था कि गुरू ब्रह्मानंद जी जब अपने शिष्यों के साथ बैठे थे तब एक संत ने आकर अपना परिचय अघोरी के रूप में दिया। गुरूजी ने स्वामी जी को बड़े ही आदर से बिठाया और भोजन का आदेश दिया। अपने सेवकों को उन्होंने कहा कि भोजन की थाली में थोड़ा मल भी परोसा जाए बहुत दिनों बाद कोई अघोरी मिला है। गुरूजी के निर्देश के अनुसार भोजन की थाली परासी गई। स्वामी जी थाली देखकर की घबरा गए। गुरूजी उस साधू का हाव-भाव देखकर ही समझ गए थे कि यह अघोरी नहीं है। जब साधू ने माफी मांगी तब गुरूजी ने उन्हें छोड़ा। सचमुच हमारी धार्मिक भावना का लाभ उठाने के लिए कुछ लोग सिद्ध संत हो का नाटक करते हैं।

मैं शंकराचार्य जी की बातों से सहमत न होता हुआ भी उनकी बातों को व्यापक रूप देना चाहता हूँ। व्यक्ति पूजा के इस बाजार में कृपा का एक बड़ा बाजार खड़ा किया गया है। मेरा बड़ी विनम्रता से यह सवाल हैं कि शिरडी के साईं ही क्यों? क्या किसी भी व्यक्ति की पूजा होनी चाहिए? जब शंकराचार्य संतों की बड़े घरानों में धनाढ्‌य स्त्री पुरूष पूजा करते हैं। तब कोई सवाल नहीं उठाता। क्या शंकराचार्य या कोई भी संत पूजा का अधिकारी है? ईश्वर की पूजा की जानी चाहिए या व्यक्ति या गुरू की। कुछ लोग गुरू की पूजा के लिए इस दोहे का सहारा लेते है।

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाए।
बलिहारी गुरू आपकी गोविन्द दियो बताय।।

दोहे में कहा गाया है कि गुरू और गोविन्द दोनों साथ-साथ खड़े हैं। मैं किसको प्रणाम करूँ। गुरू ने ही गोविन्द की जानकारी दी है इसलिए गुरू गोविन्द अथवा ईश्वर से बड़े हैं। मुझे लगता है कि यह तर्क करीब-करीब ऐसा है, जैसे कोई मंजिल में पहुँचने की बजाय माईल स्टोन की ही पूजा करने लग जाए। किसी मंदिर का मार्ग बताने के लिए मार्ग-सूचक बोर्ड या फिर माईल स्टोन लगा हुआ हो और व्यक्ति उस पत्थर की ही पूजा करने लग जाए। इसे बुद्धिमत्ता तो नहीं कहा जा सकता। धर्म का मार्ग बुद्धि को तिलांजलि देना नहीं, बुद्धि का विशिष्ट उपयोग करना है। मुझे स्मरण आता है एक प्रसिद्ध योग गुरू संत रायपुर आये हुए थे। आर्यसमाजी पृष्ठभूमि के कारण वे भी व्यक्तिपूजा के विराधी रहे हैं। उनके स्वागत में हम मंत्रपाठ और शंखनाद कर रहे थे। मैंने देखा की कुछ माताओं ने स्वामी जी की आरती उतारी। स्वामी जी ने किसी को भी नहीं टोका। सचमुच जब अपनी प्रतिष्ठा या पूजा होती है तब झूठ या पाखण्ड भी प्यारा लगने लगता हैं। कबीर ने सही ही कहा है पर उपदेश कुशल बहुतेरे।

साईं का सम्मान या उनकी पूजा एक गुरू के रूप में हो तो कोई हर्ज नहीं है। शंकराचार्य जी कहते हैं कि सांई गुरू भी नहीं है। कौन गुरू है और कौन नहीं क्या इस बात प्रमाण-पत्र जारी करने का अधिकारी है आपको? मेरा सभी साईं भक्तों से विनम्र अनुरोध है कि साईं को मानने से ज्यादा जरूरी है साईं की सही/सत्य बातों को, उनके उपदेशों को मानना। चित्र की नहीं चरित्र की पूजा करनी ज्यादा जरूरी है। पूजा का अर्थ यही नहीं है कि आप काकड़ आरती करें, शिरडी जाएं,। साईं की सच्ची भक्ति साईं के वेदानुकूल/सत्य उपदेशों को मानने में है। अगर मैं स्वामी दयानन्द का अनुयायी या भक्त हूं तो मुझे किसी न किसी अंश में स्वामी दयानन्द के विचारों और उपदेशों से स्वयं को जोड़ना होगा। उनका अनुगमन किये बगैर मैं उनका अनुयायी या भक्त नहीं बन सकता। अगरबत्ती घुमाना बहुत आसान हे। किसी विचार विशेष के अनुसार जीवन को घुमाना बहुत ही कठिन है। हमने कभी सोचा ही नहीं है कि परिक्रमा का अर्थ क्या है? मंदिर आदि अनेक देव स्थानों में पूजा के बाद परिक्रमा का विधान किया जाता है। मैं एक बार रोटरी क्लब में सभा को संबोधित कर रहा था। वह सभा तो वैसे क्लब के सदस्यों के लिए ही थी किन्तु उसमें कुछ आर्यसमाजी मित्र भी आए हुए थे। मुझसे किसी ने पूछा कि परिक्रमा वैदिक है या अवैदिक? मैंने कहा-वैदिक। वे बड़े नाराज हुए और कहने लगे प्रमाणित करो। मैंने उन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की संस्कार विधि का वह प्रसंग याद दिलाया, जहां उपनयन संस्कार के प्रसंग में गुरु की परिक्रमा का विधान किया गया है। परिक्रमा संकल्प का एक रूप है। गुरुमंत्र लेकर शिष्य जब गुरु की परिक्रमा करता है उसका आशय इतना ही है कि शिष्य अपने जीवन को गुरु के अनुसार चलाना चाहता है। हम जिसकी परिक्रमा करते हैं, उसे अपने जीवन का केंद्र बिन्दु स्वीकार करते हैं। परिक्रमा सिर्फ परिक्रमा है तो फिर उससे किसी का भला नहीं हो सकता।

शंकरचार्य जी ने मिलावट की बात की है। यह तर्क भी उनके विरुद्ध जाता है। जब रामायण की बात आती है तब वाल्मीकि की रामायण को प्रमाण मानना चाहिए या तुलसी दास की रामायण का? क्या तुलसी रामायण राम के उस स्वरूप से विपरीत नहीं है, जो वाल्मीकि ने अपने रामायण में लिखा है। जब कोई संत नामधारी व्यक्ति सलाखों के पीछे जाता है, तब ये ही लोग इस घटना को संतो के खिलाफ साजिश कहने में थोड़ा भी समय नहीं लेते। अगर शंकराचार्य अपनी ही बात पर कायम हैं तो उन्हें अपने विचारों को व्यापक रूप प्रदान करना चाहिए। साईं के विरोध से ज्यादा अच्छा होता कि वे अपने इन प्रगतिवादी विचारों को उस समय के लोगों पर क्रियान्वित करें, जिस समाज से वे आते हैं। क्या पुराणों ने कृष्ण के विशुद्ध स्वरूप में मिलावट नहीं की है? वेद के विशुद्ध स्वरूप के विरुद्ध अथवा विपरीत खड़े ग्रंथों

के खिलाफ एक सशक्त आवाज उठाने की जिम्मेदारी भी तो शंकराचार्य जी की है। कुछ सांई भक्तों ने शंकराचार्य जी के खिलाफ उग्र प्रतिक्रिया दी है। एक भक्त ने यह भी कहा कि साईं ने कभी स्वयं को भगवान नहीं कहा। मैं इन भक्तों से इतना ही पूछना चाहता हूं कि जो साईं कहते हैं, वह ज्यादा प्रमाणिक है या फिर उनके भक्त। जब साईं ने खुद को कभी ईश्वर नहीं कहा या माना तो क्या हम उन्हें ईश्वर कहकर उनकी बातों के विरुद्ध नहीं जा रहे हैं। जिसने साईं की ही बात नहीं मानी वह भक्त समुदाय शंकराचार्य जी की भला क्या मानेगा? हमें सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में उद्यत रहना चाहिए।

कुछ आर्यमित्र मेरे इस लेख को पढ़कर सोच सकते हैं कि मैं साईं के पक्ष में खड़ा हूं किन्तु सच यह है कि मैं दोनों के पक्ष में नहीं हूं। अगर साईं की पूजा नहीं होनी चाहिए तो किसी भी गुरु या व्यक्ति की पूजा नहीं की जानी चाहिए। ईश्वर अजन्मा है। इसलिए किसी को अवतारी घोषित करना ईश्वर का अपमान करना है। टी.वी. में एक शंकराचार्य समर्थक किसी भक्त ने कहा था कि शंकराचार्य साईं के खिलाफ नहीं हैं। साईं की आड़ में जो बाजार खड़ा किया जा रहा है, उस बाजार के विरुद्ध हैं, स्वामी जी। मैं इस दृष्टि से भी विचार करना चाहता हूं। मुझे देश का ऐसा कोई मंदिर नहीं मालूम जिसने बाजार खड़ा नहीं किया हो। सोमनाथ के मंदिर के आस-पास जो मंदिर हैं वहां खुले आम एक तोले दूध में एक किलो पानी मिलाकर महादेव के अभिषेक के लिए बेचा जा रहा है। गंगा के तट पर गंगा जी की आरती का दो-चार रुपये की लागत का सामान 21 रुपये से लेकर 10 रुपये तक बेचा जा रहा है। मैंने खुद एक बार शिरडी की यात्रा की है। मुझे एक रोचक प्रसंग याद आया कि एक बार मेरी धर्मपत्नी ने एक दुकान से चाय ली, आठ रुपये उसका मूल्य था। अगले दिन सुबह फिर चाय पी। दुकान वाले ने दस रुपये मांगे। जब हमने बहस की तो बताया कि यहां प्रतिदिन अलग-अलग मूल्य होता है। साईं ट्रस्ट द्वारा एक रुपये में उपलब्ध करायी जाने वाली चाय इस चाय से कई गुनी स्वादिष्ट होती है। शनि सिंगनापुर जाने का वहां किराया शनिवार को सबसे महंगा होता है। शिरडी संस्थान पर उंगली उठाने से पहले अन्य ट्रस्टों को भी देखा जाना चाहिए। शिरडी साईं संस्थान की व्यवस्था के मुकाबले में त्र्यम्बकेश्वर मंदिर की व्यवस्था के संबंध में शंकराचार्य को सोचना चाहिए। त्र्यम्बकेश्वर मंदिर में न तो भोजन की व्यवस्था है और न ही भक्तों के विश्राम की कोई व्यवस्था है। अमृतसर के स्वर्ण मंदिर की व्यवस्था को मैं दुनिया की सबसे बेहतरीन व्यवस्था कहता हूं, जहां गरीब से गरीब व्यक्ति भी कुछ दिन चिंतामुक्त होकर बिता सकता है। इसी मंदिर से प्रेरित होकर दुर्ग्याणा मंदिर बनाया गया है। यहां पांव धोने की वैसी ही व्यवस्था है, जैसी स्वर्णमंदिर में है। सरोवर भी बनाया गया है किन्तु रखरखाव के अभाव में सब चौपट हो गया है। क्या शंकराचार्य ने इसके लिए कभी कोई ठोस पहल की है। कुम्भ के नाम पर रातों-रात कितना बड़ा बाजार खड़ा कर दिया जाता है। आज गंगा की सफाई को लेकर देश और दुनियां में बड़ी चिंता है। क्या गंगा की इस दुर्दशा के लिए हमारी धार्मिक मान्यता या परम्परा जिम्मेदार नहीं है। गंगा जी की आरती, मृतक श्राद्ध, अस्थि-प्रवाह, कुम्भ जैसे धार्मिक मेले गंगा जैसी प्राणदायिनी नदियों के जल को विष बना रहे हैं। शंकराचार्य जी की चिंता मुझे इस बात के लिए ज्यादा जरूरी लगती है तेरी दुकान मेरी दुकान से बड़ी क्यों है? मैं तो शंकराचार्य जी से इतना ही कहूंगा कि जिनके घर शीशे के होते हैं, वे दूसरों के घरों में पत्थर नहीं फेंका करते। आप व्यक्ति पूजा और अन्धविश्वास के खिलाफ सच्चे अर्थों में एक बड़ा आन्दोलन खड़ा कीजिए। हम आपके साथ कदम दर कदम चलेंगे।

टिप्पणी : सम्पादक व प्रकाशक लेखक के इस लेख से पूर्णतया सहमत नहीं है, हम पाखण्ड और अन्धविश्वास के (चाहे वो कहीं भी हो) सर्वदा/सर्वथा विरोधी हैं।

दिन को सुदिन (शुभदिन) कैसे बनावें?

(उदयनाचार्य, निगमनीडम्-वेदगुरुकुलम्, पिडिचेड, गज्वेल, मेदक (आं.प्र.)

प्रत्येक मनुष्य सदा ही शुभ एवं सुखद परिणामों को चाहता है। पर आज का मनुष्य शुभ परिणामों को प्राप्त करने हेतु करणीय कर्मो से सर्वथा अनभिज्ञ है। तत्परिणामतः वार, तिथि, मुहूर्त, नक्षत्र, ग्रह, राशि आदियों में से कुछ को शुभ एवं कुछ को अशुभ मानता है और इन्हीं के कारण शुभ-अशुभ वा सुख दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसी मान्यता रखता है। यह सब पौराणिक युग में लिखित फलित ज्योतिष के ग्रन्थों का दुष्प्रभाव है। जो कि सर्वथा कल्पित, निराधार, अविवेक पूर्ण है। ईश्वर ने यह सृष्टि जीव के भोग तथा अपवर्ग (मोक्ष) के लिए अर्थात् मनुष्य के कल्याण के लिए ही बनायी है। तब तो इसकी प्रत्येक वस्तु मनुष्य के लिए हितकारी वा शुभ ही होगी। अब शुभ-अशुभ, हित-अहित आदि तो मनुष्य के विवेक और कर्मों पर निर्भर हो जाता है। क्योंकि उनका निर्माता ईश्वर है। फलित ज्योतिष (?) को मानने वाले लोग यह विचार कर नही पा रहे हैं कि उनकी वह आस्था ईश्वर की कर्म व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। शराब, मांस के व्यापारी भी अपने-अपने दुकानों में अपने इष्ट देवी-देवताओं के चित्र लगाते हैं और प्रतिदिन उनकी पूजा भी करते हैं। साथ में प्रत्येक कार्य को शुभ-अशुभ का विचार कर व पण्डितों से पूछकर ही करते हैं। अपने घर व दुकान आदियों को वास्तुविदों (?) के परामर्श से ही बनाते हैं, यहाँ तक कि अपने मांसादि व्यापार के प्रारम्भ के लिए भी शुभमुहूर्त (?) निकाल कर ही आरम्भ करते हैं। तो क्या उतने से ही उन व्यक्तियों का कल्याण होगा? क्या उन्हें शुभ वा सुखद परिणाम मिलेंगे? उन व्यापारों के मुहूर्त निकालने वाले पण्डित व ग्रन्थ मान्य वा प्रामाणिक कहने योग्य हैं? क्या यह सब ईश्वर पर अनास्था नहीं है? अज्ञान नहीं है? स्पष्ट है ये सब केवल अपने अज्ञान वा अविवेकता को कुछ काल तक छिपाकर सन्तुष्ट होने का गोरखधन्धा मात्र है। किसी कवि ने इसी मर्म को बड़े सरल और तात्त्विक शब्दों में कहा है-

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
फलं पापस्य नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति मानवाः।।

मनुष्य पुण्य कर्मो के फलों (सुखों) को तो बहुत चाहता है, पर पुण्यकर्म करने के लिए उत्सुक नहीं रहता। पापकर्मों के फलों (दुःखों) को तो कभी नहीं चाहता, पर पापकर्म करने के लिए सदा उद्यत रहता है। इस संसार में फैले हुए अज्ञान, पाखण्ड, पौराणिकता, फलित ज्योतिष आदियों का मूल कारण यही है।

वेद और आर्ष ग्रन्थों का दृष्टिकोण उससे सर्वथा भिन्न है। जो कि त्रैकालिक सत्य है। वेद का सिद्धान्त है कि शुभ-अशुभ भाग्य आदि सभी मनुष्य के हाथ में है अर्थात् उसके कर्मों के आधीन हैं- कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य आहितः (अथर्व. 7.50.8)। मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक दिन को शुभ दिन व सुदिन कैसे बनायें, अपने जीवन को सुख-शान्तियों से परिपूर्ण कैसे बनायें? इसे वेदमंत्रों के माध्यम से देखें और जानें-

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीराः अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम्।। (ऋ.3.8.5)

(जातः) वेदज्ञान को प्राप्त किये हुए द्विज (अह्नां सुदिनत्वे जायते) अपने कुल, समाज, देश, धर्म आदि के सुदिनत्व अर्थात् समुन्नति के लिए समर्थ होता है। और

वह (अर्यः विदथे समूआवर्धमानः) अपने इन्द्रियों का स्वामी बनकर ज्ञानयज्ञ में, ज्ञान के प्रचार प्रसार में भली भांति अग्रसर होता रहता है, अथवा (सन्मर्ये विदथे आवर्धमानः) विद्वानों की ज्ञानगोष्ठियों में प्रशंसनीय होता है। तथा वह (विप्रः देवयाः वाचम् उदियर्ति) विद्वान् ईश्वर का यजन अर्थात् ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए वेदवाणी का उपदेश करता है। इस प्रकार वे (धीराः अपसः मनीषा पुनन्ति) मेधावी, पुरुषार्थी पुरुष अपनी बुद्धि, प्रतिभा से सब मनुष्यों को पवित्र करते हैं।

"उन्हीं का (दिन) सुदिन होता है जो विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह कर विद्वान् होते हैं। जैसे शूरवीर पुरुष दुष्टों को जीत के धनादि ऐश्वर्य के साथ सब ओर से बढ़ते हैं, वैसे ही विद्या से विद्वान् (अज्ञान को नष्ट कर ज्ञान, यश आदि के साथ सब ओर से) बढ़ते हैं" (महर्षि दयानन्द-ऋ.3.8.5)

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।

दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि।। (ऋ.3.23.4)

प्रभु कहते हैं कि हे जीव! (त्वा पृथिव्याः वरे निदधे) तुझे पृथिवी के सर्वश्रेष्ठ स्थान पर अर्थात् सर्वोत्तम शरीर में स्थापित किया हूँ। (इलायाः पदे निदधे) गरिमामय वेदज्ञान प्राप्त करने योग्य शरीर में प्रतिष्ठित किया हूं तथा (अह्नां सुदिनत्वे निदधे) तुम्हारे जीवन के दिनों में माता, पिता, आचार्य, गुरु व विद्वानों की संगति वाले शुभदिन अर्थात् शुभ अवसर प्रदान किया हूँ। (अग्ने दृषद्वत्यां मानुषे आपयायां सरस्वत्यां रेवत् दिदीहि) हे प्रगतिशील जीव! तू इस पत्थर के सदृश सुदृढ़ शरीर में रहते हुए प्रभु की प्राप्ति के लिए उपासना में एवं वेदज्ञान की दीप्ति में स्थिर रहकर, तू ऐश्वर्यवान होकर प्रकाशित हो जाओ।

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः।

यथा यज्ञं मनुषो विष्वाइसु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम्।। (ऋ.4.37.1)

हे (ऋभुक्षाः वाजाः देवाः) महद् मेधा सम्पन्न विद्वानों! आप लोग (नः उध्वरम् उपयात) हमारे यज्ञ में उपस्थित हों और (देवयानैः पथिभिः) अलौकिक आनन्द को प्राप्त कराने वाले दिव्यमार्ग के द्वारा हमारी जीवन यात्रा को प्रशस्त कीजिये। (रेण्वाः मनुषः) रमणीय मनीषियों! आप लोक (अह्नाम् सुदिनेषु) संवत्सर के सामान्य दिनों में आने वाले विशिष्ट पर्व दिनों में या उन पर्वीय यज्ञों में उपस्थित होकर (आसु विक्षु यथा यज्ञं दधिध्वे) इन प्रजाओं में यथार्थ यज्ञ को अर्थात् ईर्ष्या, द्वेषादि दोषों से रहित परस्पर दान, संगीत, प्रीति आदि व्यवहारों को प्रचलित कराईए अर्थात् इन पवित्र कर्मों से ही दिन शुभ दिन हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।

पोषं रयीणामरिष्टिं। तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्।। (ऋ.2.21.6)

(इन्द्र) हे प्रभो! आप (अस्मे) हमें (श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि) शुद्ध, पवित्र अन्नादि धन प्रदान कीजिए। (दक्षस्य चित्तिम्) कुशल व्यक्तियों का सामर्थ्य व ज्ञान हमें प्राप्त कराइए। (सुभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य (रयीणां पोषम्) ऐश्वर्यों की वृद्धि (तनूनाम् अरिष्टिम्) शरीर की निरोगता और (वाचः स्वाद्मानम्) वाणी की मधुरता या जीभ के लिए शुद्ध, सात्विक एवं स्वादिष्ट भोजन प्रदान कर (अह्नां सुदिनत्वम्) हमारे जीवन के प्रत्येक दिन को शुभदिन बनाईए।

जीवन की चरितार्थता अर्थात् हमारे प्रत्येक दिन को शुभ, सार्थक बनाने के लिए धनाद्यैश्वर्यों की पवित्रता, सत्कार्यों में कुशलता और प्रीति, परोपकार, दान यज्ञादि

पवित्र कार्यों के अनुष्ठान के निमित्त ऐश्वर्य की वृद्धि, शरीर की स्वस्थता, मधुरवाणी अथवा शुद्ध-सात्विक भोजन होना अनिवार्य है। तभी हमारा दिन सुदिन होगा।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।

स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः।। (ऋ.7.88.4)

(वरुणः वसिष्ठं नावि ह आधात्) वरणीय आचार्य उनके आधीन बसने वाले ब्रह्मचारी शिष्य को भवसागर से पार उतारने वाली वेदज्ञान रूपी नौका में अवश्य स्थापित करें। वह स्वयं (स्वपाः महोभिः वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम कर्मशील, सदाचारी होकर बड़े-बड़े गुणों से उत्तम ब्रह्मचारी को मन्त्रार्थ के दर्शन करने में समर्थ विद्वान् बनावें। (विप्रः अह्नां सुदिनत्वे यात् द्यावा नु यात् उषासः नु स्तोतारं ततनन्) मेधावी आचार्य दिनों को शुभ, मंगलकारी बनाने के लिए आये दिनों एवं आयी रातों में भी अध्ययनशील शिष्य को और अधिक ज्ञानवान् बनावें अर्थात् ज्ञानार्जन से ही मनुष्य के दिन उज्जवल हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

इमां में अग्ने समिधं जुषस्वेलस्पदे प्रति हर्या घृताचीम्।

वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या। (ऋ.10.70.1)

ईश्वर उपदेश दे रहे हैं कि (अग्ने! में इमां समिधं जुषस्व) हे प्रगतिशील जीव! तू मेरी इस वेदज्ञान के रूप में दी गई ज्ञानदीप्ति को प्रीति एवं श्रद्धा पूर्व ग्रहण कर। (इडस्पदे घृताचीम् प्रतिहर्य) वेदज्ञान की प्राप्ति के निमित्त तू अपने अन्तः करण में व्याप्त मोहादि अज्ञानों को नष्ट कर। (सुक्रतो! पृथिव्याः वर्ष्मन् अह्नां सुदिनत्वे देवयज्या ऊर्ध्वो भव) हे उत्तम प्रज्ञा वा उत्तम कर्मवाले जीव! तू इस धरातल पर अपने जीवन के दिनों को सुदिन व दिव्य बनाने के लिए देवयज्ञ, व्रत-तप पुरुषार्थ आदि के द्वारा जागृत हो जाओ, अज्ञान में व सोने में ही मत रहना। सोने वाले व अज्ञानियों के दिन कभी सुदिन नहीं हो सकते।

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।

यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः।। (ऋ.10.39.12)

हे (अश्विना) सुशिक्षित जितेन्द्रि स्त्रीपुरुषों! (वाम् यं रथम् ऋभवः चक्रुः) तुम दोनों के जिस दिव्य रथ को ऋभुलोग (ऋभु तीन हैं- 1. ऋभु अर्थात् सत्यज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति 2. विभ्वन्- व्यापक हृदयवान् व विशाल मन-मस्तिष्क वाला व्यक्ति, 3. वाज- जिसका शरीर सम्पूर्ण रूप से शक्तिशाली हो, इन तीन गुणों से युक्त विद्वान् लोग) उपदेश करते हैं (तेन मनः जवीयसा आयातम्) मन के बल से चलायमान उस रथ से मोक्षप्राप्ति के निमित्त आ जाओ, सन्नद्ध हो जाओ (यस्य योगे दिवः दुहिता जायते) जिससे सम्बन्ध होने पर इसमें तत्त्वज्ञान का पूरण करने वाली वेदवाणी आविर्भूत हो जाती है। तब (विवस्वतः उभे अहनी सुदिने) सूर्य के कारण उत्पन्न दोनों रात-दिन अर्थात् प्रत्येक दिन तुम्हारे लिए शुभ दिन ही होते हैं, सुख, शान्ति और आनन्द को लाने वाले होते हैं।

त्वामीलते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन् मानुषासः।

यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति।। (ऋ.7.11.2)

हे (अग्ने) ईश्वर! (हविष्मन्तः मानुषासः दूत्याय सदम् इत् अजिरं त्वाम् ईडते) सतत् यज्ञ करने वाला मननशील मनुष्य दूत कर्म के लिए अर्थात् ज्ञान का सन्देश प्राप्त करने के लिए सदा ही पवित्र एवं उन्नति कराने वाले तुम्हारी उपासना करते हैं। (यस्य बर्हिः देवैः आसदः)

जिसके आसन पर अर्थात् निर्मल अन्तः करण में आप देवों के साथ विराजमान होते हैं (अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति) ऐसे व्यक्ति के लिए सभी दिन शुभ (आह्लादक) दिन ही होते हैं।

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत्।

विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत्।। (ऋ.4.4.6)

(यविष्ठ) हमारी बुराइयों को दूर कर अच्छाईयों को मिलाने वाले हे प्रभो! (य ईवते ब्रह्मणे गातुम् ऐरत्) जो जगत् को संचालन करने वाली शक्ति के स्वामी महान् परमेश्वर को प्राप्त करने के मार्ग को उपदेश करता है (स ते सुमतिं जानाति) वह तेरी उत्तम ज्ञान को जानता है। (अस्मै विश्वानि सुदिनानि) ऐसे विद्वान् के लिए उसके सभी दिन शुभ दिन ही होते हैं। और उसको (रायः द्युम्रानि) सर्वविध ऐश्वर्य एवं यश वा ज्ञान की प्रतिभा प्राप्त होती है। (अर्यः दुरः वि अभिद्यौत्) इन्द्रियों का स्वामी होता हुआ सब इन्द्रि द्वारों को विषष्टरूप से प्रदीप्त करने वाला होता है।

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः।

पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः। (ऋ.4.4.7)

हे (अग्ने) परमेश्वर! (यः नित्येन हविषा य उक्थैः त्वा स्वे आयुषि दुरोण पिप्रीषति) जो प्रतिनित्य यज्ञ की हवियों के द्वारा और स्तुतियों के द्वारा आपको अपने जीवन में एवं शरीररूप घर में प्रसन्न करने का यत्न करता है (स इत् सुभगः सुदानुः अस्तु) वही बड़े सौभाग्यशाली तथा उत्तम दानशील हो। (अस्मै विश्वा इत् सुदिना) उसके ही सब दिन सुखकारक एवं शुभदिन होते हैं। (सा इष्टिः असद्) उसके ही यज्ञ सफल होते हैं।

अज्येष्ठासो अकानिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः।। (ऋ.5.60.5)

(एते अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः भ्रतरः सौभगाय सं वावृधुः) ये मनुष्य परस्पर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच आदि भेदों से रहित होकर भाइयों के समान एक दूसरे का भरण पोषण करते हुए सौभाग्य अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए मिलकर आगे बढ़ें, उन्नति को प्राप्त करें। इस के लिए प्रत्येक व्यक्ति (पिता) आवश्यक कर्तव्यों का पालन करने वाला (युवा) स्वस्थ एवं बलशाली (स्वपा) (सुअपाः) उत्तम कर्मों को करता हुआ अपने परिजनों की रक्षा करता हुआ (रुद्रः) बाह्य एवं आन्तरिक सभी विघ्नों एवं आसुरीभावों को नष्ट करने वाला (मरुद्भ्यः) इन वायु के समान बलवान् एवं पुरुषार्थियों के लिए (पृश्निः सुदुधा) सूर्य, आकाश, पृथिवी और पुष्टिकारण दूधादि पदार्थों को देने वाली गौवें होवें (एषां सुदिना) ऐसे व्यक्तियों के अर्थात् कर्तव्य निष्ठ व्यक्तियों के ही दिन सुदिन होते हैं

अभी तक हमने वेदमंत्रों के माध्यम से जाना कि **वैयक्ति, पारिवारिक, सामाजिक स्तर पर मानसिक एवं आत्मिक सुख-शान्ति को प्राप्त करने की साधना में ही शुभत्व निहित है।** शुभकर्मों के बिना शुभ परिणामों अर्थात् सुखों को चाहने वालों को उद्दिष्ट कर उपनिषत्कार कहते हैं कि-

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।
(श्वेताश्वतरोप. 6.20)

सत्कर्मों को न करने वाले, मोक्षमार्ग पर न चलने वाले को सुख वा शुभ प्राप्त होना वैसा ही असम्भव है, जैसे कि आकाश को चर्म, चटाई के समान गोल-गोल लपेटना असम्भव है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७ जुलाई २०१४
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/७/२०१४

जुलाई 2014

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में..
ग्राम...
डा० ....
जिला...

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : ईरानियन आर्ट प्रिन्टर्स, १५३४, गली कासिमजान, बल्लीमारान, दिल्ली-६